घर बने घर टूटे

घर जले घर टूटे

'घर बने घर टूटे' मेरा पहला उपन्यास है, जो 1953 में 'प्रगति प्रकाशन' से प्रकाशित हुआ था। लेकिन कुछ ही समय बाद 'प्रगति प्रकाशन' बंद हो गया और इस उपन्यास का क्या हुआ, यह मुझे नहीं मालूम। कितने लोगों ने इसे पढ़ा होगा, यह भी नहीं जानता। कई बार पुस्तक के पुनर्प्रकाशन की बात उठी, किन्तु मुझमें उत्साह का अभाव था। जून 1979 में ओंप्रकाश जी से एक संकलन के प्रकाशन के सिलसिले में यह तय हुआ कि इस उपन्यास का एक छोटा-सा भाग उसमें प्रकाशित किया जाये। पर उस संकलन से पूर्व ही उपन्यास को फिर से छापने का निर्णय भी ले लिया गया। उपन्यास को पढ़ते समय अधिक परिवर्तन की गुंजाइश मुझे महसूस नहीं हुई, अन्यथा इसे दुबारा लिखना ही एक दूसरा रास्ता था। लेकिन इससे उपन्यास की पूरी कायापलट ही हो जाती। अतः भाषा में इधर-उधर कुछ परिवर्तन करने के अतिरिक्त मैंने पुस्तक को वैसा ही रहने दिया है। पच्चीस वर्ष पूर्व की लेखनी में जो सीमाएँ एवं जो गुण थे, उन्हें स्वीकार करने में आपत्ति क्यों?

रामकुमार

'घर बने घर टूटे' मेरा पहला उपन्यास है, जो 1953 मे 'प्रगति प्रकाशन' से प्रकाशित हुआ था। लेकिन कुछ ही समय बाद 'प्रगति प्रकाशन' बंद हो गया और इस उपन्यास का क्या हुआ, यह मुझे नही मालूम। कितने लोगों ने इसे पढा होगा, यह भी नही जानता। कई बार पुस्तक के पुनर्प्रकाशन की बात उठी, किन्तु मुझमे उत्साह का अभाव था। जून 1979 में ओंप्रकाश जी से एक संकलन के प्रकाशन के सिलसिले में यह तय हुआ कि इस उपन्यास का एक छोटा-सा भाग उसमे प्रकाशित किया जाये। पर उस सकलन से पूर्व ही उपन्यास को फिर से छापने का निर्णय भी ले लिया गया। उपन्यास को पढते समय अधिक परिवर्तन की गुंजाइश मुझे महसूस नही हुई, अन्यथा इसे दुबारा लिखना ही एक दूसरा रास्ता था। लेकिन उससे उपन्यास की पूरी कायापलट ही हो जाती। अत भाषा मे इधर-उधर कुछ परिवर्तन करने के अतिरिक्त मैंने पुस्तक को वैसा ही रहने दिया है। पच्चीस वर्ष पूर्व की लेखनी में जो सीमाएँ एव जो गुण थे, उन्हे स्वीकार करने में आपत्ति क्यों ?

रामकुमार

बस्ती मे चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था, मानो यहां कोई न बसता हो। कभी-कभी अँधेरे में से किसी कुत्ते के भूंकने का स्वर रात्रि की निस्तब्धता को चीरता हुआ दूर-दूर तक फैल जाता था और ध्यान से थोड़ी देर तक देखते रहने के पश्चात बस्ती की ऊबड़-खाबड़ झाडियां और पत्थर की बड़ी-बड़ी लाल शिलाएँ उभरती हुई प्रतीत होती थी जैसे समुद्र मे बने हुए छोटे-छोटे द्वीप हो। देवू होंठों मे सिगरेट दबाये कभी धुआं अपने चेहरे के सामने उछालता और कभी सीटी में किसी गाने की धुन गुन-गुनाता। वह धीमी चाल से फुटपाथ पर आगे बढ़ा जा रहा था। सड़क पर लगे एक बिजली के खभे के नीचे वह थोड़ी देर के लिए ठिठक कर खड़ा हो गया, मानो उस धुंधली रोशनी में वह अपने चारो ओर फैली दुनिया को इन एकान्त के क्षणों में देख लेना चाहता हो। सडक के पार बने तीन और चार-मंजिले फ़्लैटो की कुछ खिडकियो के अन्दर अब भी रोशनी दिखायी दे रही थी, किसी-किसी दीवार पर ज़मीन के ऊपर उठती हुई बेलें दीवारो मे चिपट गयी थी। देवू कुछ देर तक उन्ही मकानों की ओर देखता रहा, उनके अन्दर रहने वालो की ज़िंदगी के विषय मे सोचता रहा। मकानो के फाटक बन्द थे। यकायक पास ही किसी चौकीदार की तेज़ आवाज़ 'जागते रहो' की चेतावनी सुनकर वह चौंक पड़ा और फिर दो कदम बढ़ाता हुआ फ़ुटपाथ पर आगे बढ गया।

देवू के बाल बिखरकर उसके माथे पर झूलने लगे थे और गरमी होने

के कारण उसने अपनी कमीज के बटन खोल रखे थे। उसके चेहरे का कोई भी भाग अपनी बनावट में कोई ऐसा विशेष आकर्षण नहीं रखता था, परन्तु उसके सारे शरीर को देखकर कोई उसे कुरूप भी नहीं कह सकता था। और देवू ने कभी शीशे में अपना चेहरा देखकर अपने विषय में कभी कोई धारणा नहीं बनायी थी। ज़िंदगी के 23 वर्ष कब और कैसे बीत गये, इस विषय में जब वह सोचता था तो इस लम्बी अवधि पर उसे स्वयं ही आश्चर्य होने लगता था। देवू ने एक हाथ से माथे पर बिखरे बालों को पीछे धकेल दिया और अनायास ही उसने एक लम्बी साँस खींची। सिगरेट के अंतिम भाग में जब उसकी उँगलियाँ जलने लगीं तो उसने आख़िरी दो कश खींचकर उसे फ़ुटपाथ के नीचे झाड़ियों में उछाल दिया। तभी अपने सामने लगभग दस क़दम के फ़ासले पर किसी की लम्बी-सी परछाईं देखकर देवू चौंक पड़ा और उसके क़दम अपने-आप वहीं रुक गये।

"जग्गी, तू है ! मैं तो डर गया था। कहाँ से आ रहा है ?"

"चला जा यहाँ से, नहीं तो आज मैं तेरा ख़ून कर डालूंगा। अपने-आपको समझता क्या है ? देवकी मेरी है... ।"

देवू को जग्गी के मुँह से शराब की बू आयी। उसके मुँह से निकले शब्द बहुत ही अस्पष्ट थे। उसके होंठों से पान की पीक नीचे बह रही थी।

"आज तूने फिर पी, जग्गी—और कल किसी के कहने पर तू मुकर जायेगा...।" यह कहकर वह थोड़ा हँसने लगा।

जग्गी के पाँव लड़खड़ा रहे थे और वह ध्यान से देवू की ओर देख रहा था, मानो उसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो।

"हाँ, मैं पीता हूँ, किसी साले का बाप मुझे नहीं पिलाता, मैं अपने पैसों से पीता हूँ...।"

"ठीक है जग्गी, तू अपने ही पैसों से पीता है; आ, तुझे तेरी झुग्गी तक पहुँचा दूँ, नहीं तो रात को किसी खड्ड-वड्ड में गिर पड़ेगा... ।"

फिर जग्गी का हाथ पकड़कर देवू फ़ुटपाथ से नीचे पगडंडी पर धीरे-धीरे उतरने लगा। जग्गी के लड़खड़ाते पैर पगडंडी पर बर्फ़ की भाँति फिसले जा रहे थे और कितनी ही बार देवू को उसे गिरने से बचाना पड़ा।

जग्गी देवू को पहचान गया था। उसका हाथ पकड़कर पगडंडी पर चलने का उसने कोई विरोध नही किया। "मेरे दोस्त कभी-कभी पिला देते है, देवू, और मुफ़्त की शराब पीने से मैं इनकार नही कर सकता। मेरा बाप कभी मुझे पैसा तक नही देता, भगवान उसे जल्दी उठा ले...!"

"चुप हो जा जग्गी, कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा...?" देवू ने उसका हाथ धीरे से दबाते हुए कहा।

"मुझे किसी का डर नही है। तू मेरे बाप को नही जानता, देवू। वह हमेशा मुझसे छिपाता है कि उसने रुपये कहाँ छिपा रखे हैं, लेकिन एक दिन मैं सबका पता चला लूंगा। बस्ती वाले समझते हैं कि मैं उसके रुपये चुराकर पीता हूँ, लेकिन मैं सच कहता हूँ, देवू, कि मैंने उसके रुपये कभी नही चुराये। मैं कितना ही बुरा आदमी क्यों न होऊँ, लेकिन चोर नही हूँ, देवू, मैंने कभी किसी की चोरी नही की...।" जग्गी अपनी काँपती आवाज़ में कह रहा था।

अँधेरे मे जग्गी का पैर पगडंडी से हटकर एक बडे-से पत्थर से टकरा गया था, जिससे वह गिरते-गिरते बचा। वह फिर बुडबुड़ाते हुए कहने लगा, "सारी बस्ती मे एक भी रोशनी नही है, लेकिन सड़कों पर तो हज़ारों बत्तियाँ लगी रहती हैं, देवू, यहां भी दो-चार क्यो नही लग जाती?"

झुग्गियों का तांता आरम्भ हो गया था। प्रत्येक के सामने उसमे रहने वाले परिवार के कुछ सदस्य चारपाइयो पर और कुछ जमीन पर लेटे सो रहे थे। कभी-कभी कोई सोता हुआ व्यक्ति नीद मे बुड़बुड़ा उठता था, जिससे उसके अस्फुट स्वर अँधेरे मे एक विकृतता पैदा कर देते थे। थोडी दूर पगडडी से नीचे देवू ने बस्ती के छोटे-से तालाब की ओर देखा, जो रात मे एक काली समतल चादर बन गया था। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे टीले और काँटेदार झाड़ियाँ आदि होने के कारण वह तालाब ही बस्ती का एक ऐसा भाग था जहाँ प्रकृति की अराजकता परास्त हो गयी थी। ऊपर फुटपाथ पर बिजली की रोशनियाँ एक कतार मे बढती हुई आगे जाकर गायब हो गयी थी।

जग्गी का बाप अपनी झुग्गी के बाहर चारपाई पर बिना कुछ ओढ़े

पाँव पसारे सो रहा था और उसी के पास जग्गी की ख़ाली चारपाई बिछी हुई थी। दायीं ओर ऊँची-ऊँची झाड़ियों के घने झुंड बिखरे हुए थे। झुग्गी का दरवाज़ा बन्द था।

देवू ने जग्गी का हाथ छोड़ दिया और धीमे स्वर से कहा, "जा, चुपके से अपनी चारपाई पर सो जा। मंगत चाचा जाग गये तो कितनी ही देर तक शोर मचायेंगे !"

"मुझे किसी का डर नहीं है, मैंने किसी की चोरी...।"

तभी मंगतराम ने चिल्लाकर पूछा, "कौन है ?"

रात को पत्तों की खड़खड़ाहट से भी मंगतराम की नींद उचट जाती थी और वह किसी चोर के आने की आशंका में घबरा उठते थे और झट से झुग्गी के बन्द दरवाज़े की ओर देख लिया करते थे। उन्हें सारी बस्ती में किसी के ऊपर भी विश्वास नहीं था। बस्ती वालों को भी उनके विषय में कुछ पता नहीं था कि वह क्या करते हैं और उनके पास कितना धन है ? बस्ती के किसी भी व्यक्ति के साथ उनका कोई घनिष्ठ परिचय नहीं था, जिसे उनके विषय में अधिक ज्ञान होता। घर में जग्गी के अलावा और कोई नहीं था।

देवू जग्गी को उसकी झुग्गी के पास छोड़कर बायीं ओर की पगडंडी पर अपनी झुग्गी की ओर रवाना हो गया। कभी-कभी हवा का एक झोंका बस्ती की झोंपड़ियों को हिलाता हुआ आगे बढ़ जाता था। देवू की आँखों के सामने जग्गी की सूरत थी और वह उसकी ज़िंदगी के बारे में सोच रहा था। जग्गी शराब पीता है, दिन-भर बस्ती में आवारों की तरह घूमता है और कभी-कभी नल से थोड़ी दूरी पर बैठ कर औरतों को नहाते हुए देखता है। वह सबसे कहता है कि उसे कहीं नौकरी नहीं मिलती, लेकिन शायद नौकरी ढूंढ़ने के लिए उसने काफ़ी कोशिश भी नहीं की।

ऊपर फ़ुटपाथ पर भी सन्नाटा था। थोड़ी देर पहले सिनेमा का अन्तिम शो समाप्त हो जाने के बाद तीन-चार फटफटियाँ अपनी तेज़ गड़गड़ाहट और रोशनी से अंधकार को चीरती हुई आगे बढ़ गयी थीं। देवू की झुग्गी के बाहर छोटे-से मैदान में उसके घर वाले पाँच-छः चारपाइयों पर सो रहे थे। देवू और उसका छोटा भाई सुन्दर एक ही चारपाई पर सोते

थे। देवू चुपचाप एक कोने में सिमटकर लेट गया। सुन्दर पाँव सिकोड कर सोता था जिससे देवू को सीधे सोने में थोडी कठिनाई पडती थी। देवू के कितनी ही वार कहने पर भी सुन्दर अपनी इस आदत को बदल नही सका था। सुन्दर का शरीर उसका स्पर्श कर रहा था। चारपाई पर लेटते ही वह और भी नीचे की ओर झुक गयी।

थोडी देर वाद अपने दोनो हाथो को अपने सिर के नीचे दवाकर देवू ऊपर आसमान की ओर देखने लगा, जहाँ कुछ धुँधले और कुछ चमकीले तारे बिखरे हुए थे। उसकी आँखो मे नीद नही थी। शनिवार की रात को देवू को जागना वहुत भला लगता था, क्योकि अगले दिन काम पर जाने की जल्दी नही होती थी। वह हमेशा देर तक अपनी चारपाई पर लेटा हुआ जागता रहता था। तभी दूर ऊपर सडक पर कोई ताँगे वाला किसी फिल्मी गाने की लाइन तेज स्वर मे गाता हुआ अपना रास्ता काटने की कोशिश कर रहा था और कभी-कभी घोडे को तेज चलने के लिए, उत्साहित करने के लिए 'मेरे बेटे', 'मेरे बाशा (बादशाह)' कहकर उसे पुचकारता था। पक्की सड़क पर घोड के पैरो की चाप ताँगे के दूर जाने के साथ-साथ धीमी होती चली गयी और कितनी ही देर तक देवू के कानो में गूँजती रही।

सड़क के नीचे दूर-दूर तक खड्ड मे वस्ती की झुग्गियाँ बिखरी पडी थी--लकडी की फट्टियो की बनी छोटी-छोटी ताशके पत्तो-जैसी झुग्गियाँ। यहीं-कहीं कुछ ईंटों को जमा करके किसी परिवार ने एक कमरा बना रखा था; छतो के लिए किसी ने झाड-फूस डाल रखी थी और किसी ने टीन के कुछ टुकड़े। आने-जाने के लिए कोई निश्चित मार्ग नही था, लेकिन सड़क तक आने-जाने के लिए अनगिनत पतली-पतली पगडडियाँ बन गयी थी, जिन पर वस्ती मे रहने वाले आते-जाते थे। उन पर चलने से किसी झाड़ी के काँटों में कपडे उलझने का भय नही था। कही-कही लाल पत्थरो की वडी-वड़ी चट्टानें थी, जिन पर दिन मे वस्ती के वच्चे फिसला करते थे और जिनके चारो ओर दौड-दौड कर वे चोर-चोर खेला करते थे। वस्ती के दक्षिण मे एक छोटा-सा तालाब था, जिसका पानी गर्मियों में सूख कर केवल घुटनो तक रह जाता था और वरसात मे साल-भर की जमा हुई

गंदगी थोड़ी-वहुत धुल जाती थी। तालाव के एक ओर पेड़ अव्यवस्थित रूप से वहुत पहले वड़े हो गये थे और पतझड़ में उनके पत्ते झड़ कर तालाव में गिर कर काई में उलझ जाते थे। इस से थोड़ी दूर पर एक नल लगा हुआ था, जहाँ वस्ती के सव लोग पानी भरा करते थे, सुवह-शाम पुरुष नहाते थे और दिन में औरतों का जमघट लगा रहता था। यह स्थान वस्ती की सामाजिक ज़िंदगी का एक केन्द्र था, जहाँ से कोई भी ख़वर वहुत तेज़ी से सारी वस्ती में फैल जाती थी।

वस्ती के पूर्व में नानकचन्द अपनी दूकान के सामने एक टूटी-सी चारपाई पर वैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उनके एक हाथ में उर्दू का दैनिक अख़वार था जिस पर वह आँखें गड़ाये थे। उनकी आयु 52 के लगभग थी और वाल लगभग सारे सफ़ेद हो चुके थे। उनकी आँखों पर पुराने तार का एक चश्मा लगा हुआ था, जो सफ़ेद धागे से उनके एक कान पर वँधा हुआ था। चश्मे के एक शीशे पर एक दरार पड़ी हुई थी और यह शीशा वदलवाने की वात वे पिछले ढाई-तीन सालों से सोच रहे थे। उनके सिर पर एक मैली-सी पगड़ी वँधी हुई थी और सारे चेहरे पर कुछ इतनी स्पष्ट और गहरी झुर्रियाँ थीं जैसे सूखे पहाड़ पर वरसाती नाले हों।

दूकान की छत से पुरानी वोरी का एक परदा दो वाँसों के सहारे सामने से सूरज की किरणों को रोकने के लिए खड़ा था। दूकान के अन्दर पीछे पुराने कोट, पतलूनें, वास्कटें, टाइएँ, कमीज़ें, कुछ फ़ौजी थैले, पुलोवर आदि एक सुतली के सहारे से टँगे हुए थे, जिन पर दिन-भर की जमा हुई धूल को वह हर सुवह साफ़ किया करते थे। वस्ती के कुछ लोग सर्दियों में कुछ गरम कपड़े इत्यादि यहाँ से ख़रीद किया करते थे। कभी-कभी दफ़तरों में काम करने वाले चपरासी, ताँगे और ठेले वाले या शाम के अँधेरे में अपनी सूरतें छिपाने की चेष्टा करते हुए वस्ती के ऊपर मकानों में रहने वाले वावू लोग चुपचाप दूकान के अन्दर कोट, पतलून की फ़िटिंग देखते और कभी-कभी कोई चीज़ पसन्द आ जाने पर दवी आवाज़ में नानकचन्द से उनका मोल-तोल करते। कभी-कभी नानकचन्द अपने पड़ोसियों से इन क्लर्कों और वावुओं की खोखली और कृत्रिम रईसी ज़िंदगी की हँसी उड़ाया करते थे। दो-तीन लकड़ी के सन्दूकों को मिलाकर अँग्रेज़ी, हिन्दी और

उर्दू के पुराने रसाले और जासूसी किताबो के ढेर रखे हुए थे। एक कोने मे पुराने जूते, सेंडल, चप्पलें इत्यादि थे। दो-तीन छोटी-छोटी आलमारियाँ थी जिनके अन्दर फूलदान, प्लेटें, प्याले और दूसरे चीनी के बर्तन रखे हुए थे। कभी-कभी स्कूलों से लौटते हुए छात्र फुटपाथ से नीचे उतरकर दूकान मे घुसकर पत्रिकाओं और किताबो के पन्ने उलटते या फ़िल्मी सितारो, सेक्स से भरी कुछ तसवीरों को देखकर रहस्यमयी दृष्टि से एक-दूसरे की ओर तनिक मुसकराकर देखते। कभी-कभी कोई साहसी बालक किसी एक पत्रिका या पुस्तक को ख़रीदकर चुपचाप अपनी मोटी-मोटी कापियों के बीच में छिपा लेता। बस्ती मे कुछ लोगो का कहना था कि नानकचन्द ने दगों के समय अजमलख़ाँ रोड पर एक मुसलमान की दूकान लूटी थी और यह सामान उसी की दूकान का था, परन्तु इस बात का प्रमाण किसी के पास न था।

तभी बाज़ार से लौटते हुए पडोस की झुग्गी मे रहने वाले निहालचन्द 'जै रामजी की' कहकर नानकचन्द के पास ही चारपाई पर आकर बैठ गये। नानकचन्द ने अख़बार मोडकर अपने घुटने के नीचे दबा लिया और आँखो से चश्मा उतारते हुए बोले, "कहो लालाजी, कैसे हालचाल है?"

"ठीक है...।" निहालचन्द ने एक लम्बी साँस खीचते हुए कहा और फिर थोड़ी देर तक रुककर बोले, "मेरी समझ मे नही आता कि रोज इन अख़बारों मे क्या ख़बरें हुआ करती है, क्या ये कभी ख़त्म नही होती?"

नानकचन्द थोड़ा-सा मुसकरा दिये, मानो अख़बार पढने के ज्ञान का प्रभाव डालना चाहते हों। रोज़ डेढ-दो घटे तक अख़बार पढने की उनकी पुरानी आदत थी, यद्यपि बहुत-से पेचीदा समाचार और विदेशी ख़बरें उनकी समझ मे नही आती थी।

"लालाजी, यह दुनिया बहुत बड़ी है और उतने ही ज्यादा झगड़े यहाँ होते हैं, इसी से रोज अख़बारो को कई-कई ख़बरें मिल जाती हैं।"

"हूं—अपनी मुसीबतें क्या कम हैं जो दूसरों की ख़बरें पढते फिरें। अख़बार तो उन लोगों के लिए हैं जिनकी अपनी मुसीबतें नही होतीं, जो चैन की बंसी बजाते हैं।"

नानकचन्द थोडा-सा मुसकरा दिये। थोड़ी देर में नानकचन्द के बड़े

लड़के हुकम की स्त्री कौशल्या बग़ल में पीतल की बलटोई दबाये नीचे नल की ओर बढ़ी। अपने ससुर और निहालचन्द को चारपाई पर बैठे देखकर उसने अपनी चुन्नी सिर पर डाल ली। दोनों ने एक सरसरी-सी नजर कौशल्या पर डाली।

"कुछ दिनों में अब एक और खाने वाला घर में बढ़ जायेगा...," नानकचन्द ने कौशल्या की पीठ की ओर देखते हुए धीमे स्वर में कहा।

"सब भगवान की माया है, उसके सामने किसी की नहीं चलती," निहालचन्द बोले।

नानकचन्द ने अपना हुक्का निहालचन्द की ओर बढ़ा दिया और फिर मानो अपने ही आपसे कहने लगे, "कमाने का यह हाल है कि हुकम किसी भी जगह बीस-बाईस दिन से ज्यादा टिक नहीं पाता। जहाँ भी कोई नौकरी करेगा वहाँ मालिकों की जूतियाँ चाटनी ही पड़ती हैं। आजकल बिना चापलूसी और खुशामद के कोई भी काम नही निकलता।"

"क्या हुकम की नौकरी फिर छूट गयी ?"

"अब तुमसे क्या कहूँ लालाजी, तुम तो अपने घर ही के आदमी हो। हुकम 15 दिनों से घर पर बेकार बैठा है। क्या यह उम्र खाली बैठने की है ? मैं आज तक अपनी औलाद को समझ नहीं सका। दूसरे लड़के तरक़्क़ी कर रहे हैं। एक काम पर ज्यादा दिन टिकने से तरक़्क़ी होती है, मालिक का विश्वास बढ़ता है, लेकिन इनकी समझ में कुछ नहीं आता। और वह सुन्दर है जो रात-दिन अपनी किताबों में उलझा रहता है जैसे सरकारी अफ़सरी तो उसे ही मिलनी है...।"

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे, केवल हुक्के की गुड़गुड़ाहट शान्ति भंग कर रही थी। कहने के लिए तो नानकचन्द अपने घरवालों के विषय में सब पास-पड़ोसियों से बातें किया करते थे, परन्तु मन में इन्हें घर के किसी भी प्राणी के विषय में कोई चिन्ता नहीं थी। कोई बीमार पड़े या किसी की नौकरी छूटे, सब समाचार सुनकर उनके मन की उदासीनता और भी गहरी हो जाती थी। घर में कौन किस तरह से रहता है, कब किसका किससे झगड़ा हो जाता है, किस को क्या दुख है—इसकी चिन्ता ने कभी उनकी दिनचर्या में या रात की नींद में कोई विशेष विघ्न नहीं डाला।

दूकान से नीचे ढलान के खत्म होते ही नानकचन्द की लड़की लाली मेज़पोश काढ रही थी। फ़ैज़रोड के नुक्कड़ पर 'शरणार्थी वीमेन इस्टीट्यूट' से वह काढने के लिए मेज़पोश, पलँगपोश और बुनने के लिए पुलोवर, मोज़े, टोपी आदि ले आती थी, जिससे महीने में उसे सात से लेकर दस रुपये तक मिल जाते थे। उसके रूखे बाल हवा मे उड रहे थे। चौडा माथा, बडी-बडी आँखें और नुकीली ठुड्डी से उसके चेहरे पर बचपने की छाया झलकती थी, यद्यपि उसकी उम्र 15 के लगभग थी। आँखें थक जाने पर उसने सामने वाले टीले पर नज़र दौडायी, जिसके ऊपर चढाई वाली सड़क पर बसों और मोटरों के ऊपरी भाग दिखायी दे रहे थे। कुछ देर तक वह सडक की ओर ही देखती रही।

"आज फिर बादल घिरे हैं, शायद दिन में आँधी आये।" देवू चुपचाप लाली के पास आकर खडा हो गया था, इसका पता उसे नही चला था।

लाली एक बार देवू की ओर देखकर मुसकरा दी—"पानी बरसेगा तो गर्मी कुछ कम होगी।" और वह फिर गोद में पडे मेज़पोश की ओर झुक कर हरे धागे से लाल फूल के चारो ओर पत्तियां बनाने लगी। लाली कम बोलती थी, लेकिन उसका चेहरा सदा हँसता हुआ दिखायी देता था।

"क्या तू हरी-हरी पत्तियां और लाल फूल बनाती थक नही जाती, लाली? पिछली बार तो पलँगपोश पर तूने कितने ही ऐसे फूल और पत्तियाँ बनाये थे...।"

"हमारे सेंटर में कभी-कभी एक औरत अपनी छोटी-सी मोटर में आती है, देवू! उसे मेरा काम बहुत पसन्द है। वह कहती थी कि मैं ऐसे खूबसूरत फूल बनाती हूँ जैसे क्यारियो मे उगा करते हैं, हू-ब-हू वैसे ही फूल। मुझे उसके सामने मैले कपडे पहनकर जाते हुए शरम आती है। इस बार रुपये मिलने पर मैं अपने लिए छींट का एक नया सूट बनवा लूँगी...।"

देवू लाली के पास ही चारपाई पर बैठ गया और पैर के अँगूठे से ज़मीन पर निशान बनाने लगा।

"काश कि आँधी के वक्त धूल न उडा करती तो कितना अच्छा होता!"

लाली को आँधी और धूल में विशेष दिलचस्पी नहीं थी। अन्तर केवल इतना ही होता था कि आँधी के समय वह अन्दर जाकर झुग्गी में बैठ जाती थी और कभी तो आँधी के वक़्त उसे बाहर बैठना भी अच्छा लगता था, जब टीनों के ऊपर जमी रेत हवा के साथ दूर तक ऊपर आसमान में उड़ने लगती थी और लाली अपनी आँखें बन्द किये चुपचाप खड़ी रहती थी। हवा चलने की ज़ोर-ज़ोर की आवाज़ें उसके कानों में सीटियाँ बनकर गूँज जाया करती थीं और वह अपनी उड़ती चुन्नी को कमर में बाँध लिया करती थी।

ऊपर सड़क पर एक लारी सिनेमा का विज्ञापन लाउडस्पीकर से करती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी और उसकी आवाज़ नीचे तक आ रही थी। उसके पीछे बस्ती के कितने ही बच्चे शोर मचाते हुए पीछे-पीछे भाग रहे थे और लारी में बैठे हुए व्यक्ति द्वारा इश्तिहार फेंकने पर वे उन पर झपटते और दोनों हाथों से दबोच लेते थे।

लाली ने उस शोर-गुल को सुन कर एक बार सामने सड़क की ओर देखा और फिर अपना मेज़पोश काढ़ने में लग गयी।

"देख लाली, इस बार पहली तारीख़ को अपनी तनख़्वाह मिलने पर मैं तुझे और जग्गी दोनों को सिनेमा दिखाने ले चलूँगा। तंबुओं में जो भगवती टाकीज़ है न, वहीं चलेंगे।" देबू सामने लारी के पीछे लगे बड़े-से इश्तिहार को देखकर कह रहा था। लारी धीमी चाल से तीसरे गीयर पर चढ़ाई में ऊपर चढ़ रही थी और विज्ञापन पर बने ख़ूबसूरत चेहरे धुँधले होते जा रहे थे। परन्तु लाली चुप रही, देबू का प्रस्ताव सुन कर उसने कोई उत्सुकता नहीं दिखायी। वह चुपचाप मेज़पोश पर अपनी आँखें गड़ाये रही।

"तू चुप क्यों है लाली, क्या सिनेमा देखने की तेरी तबीयत नहीं करती?"

लाली ने अपना चेहरा ऊपर उठाया और थोड़ा हँस दी, "तू कितनी बार सिनेमा चलने को कह चुका है देबू, लेकिन शायद तेरी पहली तारीख़ कभी नहीं आती।"

देबू तनिक झेंप-सा गया, वह और भी ज़ोर के साथ पैर के नाख़ून से

ज़मीन पर रेखाएँ बनाने लगा। "हूं, मैं क्या करूँ? हर पहली तारीख़ की शाम को बाबू मुझसे सारे रुपये छीन लेता है, लेकिन इस बार मैं पाँच रुपये अपने पास रख लूंगा। मैं कह दूंगा कि मैंने अपने दोस्त से पाँच रुपये उधार लिये थे वे चुका दिये।"

"देबू, कल बाबू कह रहा था कि अब वह सुन्दर को नहीं पढ़ायेगा। उसे कहीं नौकरी दिलवा देगा, हुकम की नौकरी भी तो छूट गयी है।" लाली देबू की ओर देखकर कह रही थी।

देबू चुप रहा। कभी-कभी उसका मन होता था कि उससे कोई भी चर्चा न करे। उसकी अपनी ज़िंदगी की मुसीबतें क्या कम हैं कि दूसरों का भार अपने ऊपर डालकर वह अपने हृदय को और भी भारी बनाये। फिर वह सहानुभूति दिखलाने या उसके विषय में सोचकर अपना जी दुखाने के अतिरिक्त और कर भी क्या सकता है? सुन्दर को अगर बाबू ने नहीं पढ़ाया तो उसमें क्या इतनी ताकत है कि वह बाबू का विरोध करे? आखिर उसकी बिसात ही क्या है? महीने के बाद चालीस रुपये वह बाबू के हाथ में अपनी तीस दिनों की कमाई धर देता है, और अगर कल को उसकी भी नौकरी छूट गयी तो जिस तरह हुकम पर घर वाले ताने कसा करते हैं और खाना खाते समय जैसे उसको कोसा करते हैं वैसा ही हाल उसका भी होगा, फिर वह क्या करेगा? इसी तरह दुकान की झुग्गी के सामने दिन-रात बैठा करेगा, या फिर दिन में नल की धार में नहाती हुई बस्ती की औरतों के गीले ब्लाउज़ों और बदन में चिपटी गीली धोतियों को देखा करेगा। नहीं, वह घर से भाग जायेगा...किसी दूसरे शहर, बम्बई या कलकत्ता...वहाँ उसे नौकरी ज़रूर मिल जायेगी।

हलकी-हलकी सुबह की हवा चल रही थी और बादल होने की वजह से उसमें गर्मी नहीं भर सकी थी। इतवार की छुट्टी देबू हमेशा हँसी-ख़ुशी बिना किसी जल्दी या चिन्ता के बिताना चाहता था, शनिवार की रात खाना खाने के बाद वह कितनी ही देर तक फ़ुटपाथ पर आकर [illegible] के कोने पर चला जाता था, और वहाँ पर धीरजसिंह की दुकान पर वह बैठकर रेडियो पर आते फ़िल्मी रेकॉर्ड सुनता रहता था, [illegible] खींचा करता था, या सड़क पर चलते लोगों को देखा करता था [illegible]

वाहर से जल्दी लौट आता तो वाहर अपनी चारपाई पर सीधा पीठ के बल लेटकर ऊपर आसमान की ओर ताका करता था और आने वाली ज़िंदगी के वे सारे स्वप्न देखा करता था जो दूसरों को देखकर उसके दिमाग़ में घुस गये थे। इतवार की सुवह को भी वह अपनी चारपाई से काफ़ी देर में उठता। वावू उससे कभी नहीं वोलते थे, लेकिन उसकी माँ सुभागी उसे लाटसाहव की तरह इस प्रकार लेटे देखकर दो-तीन वार डाँट देती थी, जिससे वह और भी देर तक सोता रहता था। अगर सूरज की किरणें उसके ऊपर चमकने लगतीं तो अपनी चारपाई को पास ही के पेड़ की छाया में घसीटकर वह फिर सो जाता था।

देवू ने एक हाथ ठुड्डी पर रख लिया और अपनी वायीं ओर के वस्ती के टीलों की ओर विना किसी उत्सुकता के ताकने लगा। उसकी काली आँखों में चमक थी और गालों की हड्डियाँ उन टीलों की भाँति उसके चेहरे पर उभर आयी थीं। उसके ऊपर के होंठ के ऊपर हलके-हलके वाल उगने लगे थे, जिन्हें वह हर दो महीने वाद वाल कटाते समय नाई से साफ़ करवा देता था। उसकी कमीज़ के वटन खुले हुए थे, जिसके अन्दर उसकी छाती चमक रही थी। कभी-कभी शीशे में वाल वनाते समय वह थोड़ी देर के लिए ठिठक कर चेहरे की ओर कुछ क्षणों तक ताकता रहता था।

लाली कह रही थी, "सुन्दर को पढ़ने का वहुत शौक़ है और अगर वावू ने उसकी पढ़ाई छुड़वा दी तो उसे उसका वहुत ग़म होगा...।" इसके वाद थोड़ी देर तक वह सामने सड़क की ओर देखती रही और फिर एक लम्वी साँस खींचकर कहने लगी, "किसी दिन मैं भी सोचा करती थी कि मैं भी पढ़ूँगी। जव कभी किसी मोटी किताव को किसी दुकान पर देखती थी तो हमेशा ही उसे पढ़ने की उत्सुकता मेरे मन में जाग उठती थी, लेकिन अपना नाम लिखने से आगे मैं नहीं वढ़ सकी...।"

हुकम का पाँच साल का लड़का दीनू चारपाई के पास आकर खड़ा हो गया। वह केवल मैली वनियान पहने था, उसका पेट वाहर को निकल रहा था और पतली टाँगें वहुत कुछ वेडौल-सी प्रतीत होती थीं। वह गुड़ की वनी सेमियाँ खा रहा था।

"देवू चाचा, वावू की नौकरी कव लगेगी?"

देवू और लाली दोनों थोडी देर तक दीनू के चेहरे की ओर निहारते रहे।

"माँ कहती थी कि जब बाबू की नौकरी लगेगी तो वह मेरे लिए खिलौने लायेगा। देवू चाचा, तुम बाबू की नौकरी क्यों नही लगवा देते ?"

देवू ने चुपचाप दीनू की पीठ पर हाथ रख दिया और उसके बालों को सहलाने लगा। लाली सिर झुकाकर अपना मेजपोश काढने लगी थी।

तभी सुभागी किसी काम से झुग्गी से बाहर आयी। उसके पके बालों के गुच्छे उसकी कनपटियो तक झुक आये थे, उसके चेहरे पर बुढापे की खीझ और छिपते हुए दिन की विवशता के कडे भाव उभर आये थे, जिससे नम्रता और स्नेह की भावनाएँ धुंधली पड़ गयी जान पडती थी। लाली और देवू को इस प्रकार बातें करते देखकर उसे क्रोध-सा आ गया। कभी घर के दो प्राणियो को साथ बैठकर हँसते-बोलते देखकर वह खीझ जाती थी और किसी-न-किसी बहाने उनमे कोई कसूर निकालकर उन पर चिल्लाना आरम्भ कर देती थी।

"लाली, क्या सारा दिन बाहर ही बैठी रहेगी ? घर की भी कोई फिक्र है क्या ? घर का सारा भार तो मुझ पर छोड रखा है न।"

लाली चुपचाप मेजपोश को तह करके अन्दर झुग्गी मे चली गयी। सुभागी के कभी व्यर्थ ही चिल्लाने पर भी वह कभी उलट कर जवाब नही देती थी, चुप रहने के अतिरिक्त और कोई मार्ग उसने नही अपनाया था।

देवू ऊपर फ़ुटपाथ पर आ गया। उसने अपनी जेब टटोली, उसमे दुअन्नी देखकर एक प्याला चाय और एक-आध बीड़ी पीने का उसने निर्णय किया। इतवार की सुबह का यह सबसे बड़ा आकर्षण था। सडक पर कुछ लोग आ-जा रहे थे, कभी-कभी एक-आध मोटर या लारी भी फुटपाथ की धूल उड़ाती हुई आगे भागी जाती थी। देवू ने एक दृष्टि नीचे खड्ड मे बिखरी बस्ती पर डाली, तालाब में कुछ भैंसें अपनी गर्मी दूर करने के लिए पानी मे बैठी थी, केवल उनके सिर पानी से ऊपर उठे थे। नल पर स्त्रियों, पुरुषों और बच्चो की भीड़ पानी भरने के लिए जमा थी। हवा चलने से तालाब के किनारे लगे पेड़ो की शाखाएँ उसे हिला-

दिखायी दीं।

देवू देवनगर की ओर आगे बढ़ गया। दिन-भर वह आराम करेगा, या बस्ती में इधर-उधर घूमेगा, या अपनी झुग्गी के सामने बैठकर सड़क पर आने-जाने वाले लोगों को देखेगा। उसकी कल्पना से उसे सुख मिलने लगा। और अब जाकर धीरजसिंह की दूकान पर बैठकर वह एक प्याला गरम चाय का पियेगा। अगर उसके पास पैसे होते तो वह भगवती टाकीज़ में जाकर कोई फ़िल्म देख आता। इस पहली तारीख को वह ज़रूर बाप से कुछ रुपये माँग लेगा। सुबह से लेकर शाम तक वह बचनसिंह की दूकान पर काम करता है, कभी पंचर लगाता, कभी हवा भरता और कभी 'ओवर-हाल' करता। कोई-न-कोई काम सदा उसका इन्तज़ार करता रहता है। और, बचनसिंह सुबह-सुबह ग्रंथसाहब का पाठ करता हुआ भी तिरछी आँखों से उसकी ओर देखता है और उसे जल्दी-जल्दी काम करने के लिए कहता है।

उसे रात को जग्गी वाली घटना याद आयी। मंगतराम के मारने पर भी वह शराब पीना नहीं छोड़ता। वह रात को न जाने कौन-सी देवकी के बारे में बातें कर रहा था? बस्ती में तो देवकी नाम की शायद कोई औरत नहीं है, लेकिन जग्गी अच्छा आदमी नहीं है।

सामने से तीन लड़कियाँ हँसती हुई उसके पास से गुज़र गयीं। देवू ने इतने थोड़े समय में ही तीनों को ध्यान से देखने की कोशिश की और इस बात का निर्णय वह तीनों की पीठ देखते हुए करने लगा कि उनमें सबसे खूबसूरत कौन-सी है? दायीं ओर काली कमीज़ पहने लड़की के बालों के पीछे एक सफ़ेद फूल लगा था, बीच वाली के बालों की दो चोटियाँ थीं, एक आगे और एक पीछे और तीसरी की कमर ज़रा मोटी थी और पीठ भी काफ़ी चौड़ी थी। देवू को उसके चेहरे की थोड़ी-सी झाँकी और दिखायी दी, उसका सफ़ेद रंग और काले-गहरे बाल और फिर बिजली की भाँति वे उसकी आँखों के सामने से ग़ायब हो गयीं।

देवू चुपचाप आगे बढ़ गया। सामने सड़क ख़त्म हो गयी थी और साथ पहाड़ी की चढ़ाई भी। सड़क के खत्म होते ही दायीं ओर पेट्रोल का पम्प था और उसके पीछे छोटा-सा ईंटों का बना एक कमरा, जो दफ़्तर का काम

Harsh Library & Reading Room
GEETA B-4 W/N, ADARSH NAGAR
JAIPUR-302004

देता था, जिसके सिर पर एक किनारे लगे घने पीपल की छाया सदा छायी रहती थी और चढ़ाई चढ़ने के बाद लोग गर्मियों में अपना पसीना पोंछते हुए क्षण-भर के लिए वहाँ आराम करने लगते थे। देवू भी यहाँ थोड़ी देर के लिए ठिठक गया। सड़क के उस पार दो या तीन-मंज़िले साफ़-सुथरे फ़्लैटों की कतारें थीं। किसी मकान के आगे थोड़ा-सा बाग-बगीचा, या कुछ फूलों की क्यारियाँ, या फिर कुछ बेलें खिड़कियों के ऊपर दीवारों पर चिपटी हुई थीं, जो दूर से अनगिनत काले-काले सुराख मालूम पड़ते थे। उनके पीछे कुछ मंदिरों के कलश या पुरानी मसजिदों की टूटी हुई गुम्बदें, जिन पर बरसात का पानी उनके कच्चे रंगों को हमेशा धो दिया करता था, और फिर कुछ ऊबड़-खाबड़ झाड़ियाँ, कुछ जंगली पेड़ और कुछ टीले चमक रहे थे। इस दृश्य के दूसरी ओर नया बना हुआ शहर था, जिसमें मुख्यतः रिफ्यूजी ही रहा करते थे, अमीर और गरीब रिफ्यूजी दोनों। जिन अमीर रिफ्यूजियों को शहर में मकान नहीं मिल सके थे उन्होंने वहाँ ज़मीनें लेकर अपनी कोठियाँ बनवा ली थीं। उन्होंने अपने कुछ कारखाने भी यहाँ खोल रखे थे, लेकिन बिज़नेस सारा शहर में ही हुआ करता था।

देवनगर आरम्भ होते ही पहले चौराहे पर धीरजसिंह का चाय का स्टाल था, जहाँ हमेशा ही कभी ताँगे वाले, कभी शाम को दफ़तर से लौटते हुए चपरासी या कभी कोई छात्र आकर बैठ जाते थे और कभी एक प्याला चाय, शिकंजवी, कोकाकोला या लेमन पी लेते थे। हमेशा दुकान पर लगे रेडियो में किसी-न-किसी स्टेशन से फ़िल्मी रेकॉर्ड या ख़बरें आती रहती थीं। पास ही ताँगे वालों का अड्डा था और जब कभी किसी सवारी को बिना नम्बर का ताँगा बिठा लेता तो वहाँ पर झगड़ा हो जाता था और राह चलते लोगों की भीड़ जमा हो जाती थी। कभी सड़क पर गुज़रता कोई सिपाही भीड़ देखकर अंदर घुस जाता और किसी एक का हाथ पकड़कर उसे कोने में ले जाता और थाने ले जाने की धमकी देता, उससे कुछ पैसे ऐंठ लेता और फिर चुपचाप सीटी बजाकर शहर की ओर रवाना हो जाता।

देवू ने धीरजसिंह से एक प्याला चाय बनाने के लिए कहा और स्वयं बाहर फ़ुटपाथ पर बिछी एक कुर्सी पर बैठ गया। मेज़ पर दो-तीन पुराने

उर्दू के अख़बार रखे थे और देवू ने एक नजर उन पर डालकर फिर वहाँ से नज़र हटा ली। अख़बार में उसकी कभी तबीयत नहीं लगी थी, केवल कभी-कभी नयी फ़िल्मों के इश्तिहार ज़रूर देख लेता था। अपने पिता को रोज़ सवेरे अख़बार पढ़ते हुए और सुन्दर को अपने स्कूल की मोटी और पतली, उर्दू और अँग्रेज़ी की किताबों में उलझे देखकर वह आश्चर्य से सोचने लगता था कि ये लोग किस प्रकार इतना समय पढ़ने में लगाते हैं, क्या वे ऊबते नहीं !

"अरे देवू, अच्छा तो है, आज बहुत दिनों बाद नज़र आया...!" धीरजसिंह ने चाय का प्याला देवू के सामने मेज़ पर रखते हुए कहा। वह एक बनियान और एक कच्छा पहने हुए था, बालों पर पगड़ी नहीं थी जिससे उसकी लटें उसकी गरदन पर झुक रही थीं। दाढ़ी और मूँछें इतनी घनी नहीं थीं, लेकिन टाँगों और छाती के काले बालों ने उसके शरीर के असल रंग को छिपा दिया था। वह अपने किसी भी परिचित ग्राहक से सदा यही वाक्य हँसकर कहा करता था।

पास ही की मेज़ पर एक प्रौढ़ व्यक्ति सिर पर सफ़ेद पगड़ी पहने एक स्त्री के साथ बैठा था, स्त्री की उम्र उसकी अपेक्षा बहुत कम जान पड़ती थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद स्त्री अपनी चुन्नी से अपनी आँखें पोंछ लेती थी और फिर मेज़ पर रखा शिकंजवी का गिलास होंठों से लगा लेती थी।

"अब चुप हो जा, मरे के साथ मरा तो नहीं जाता।" वह पुरुष उस स्त्री की ओर देखता हुआ कह रहा था, "बीमारी में छः महीनों से वह चारपाई पर तड़प रही थी, अब छुटकारा मिल गया...।"

पुरुष की बात सुनते ही स्त्री की आँखों में आँसू भर आये और हाथ का गिलास मेज़ पर रखकर उसने फिर अपनी चुन्नी के कोने को अपनी आँखों से लगा लिया। "लेकिन...उसके छोटे-छोटे बच्चे...उनका क्या होगा...?" वह फिर फफक उठी।

"भगवान सबको पालता है, जिसे वह दुनिया में भेजता है उसकी देख-रेख की जिम्मेदारी भी वह अपने ही ऊपर लेता है...।" फिर थोड़ी देर रुककर वह बोला, "तेरा जीजा आज काम का होता तो कोई फ़िकर नहीं

थी, लेकिन...उसे घर की फ़िकर कब हुई थी, शायद अब दूसरा ब्याह कर ले।"

रेडियो में सवेरे की खबरें शुरू हो गयी थी और स्टाल के सामने कुछ लोग दातुन चबाते हुए खडे हो गये थे। किसी के शरीर पर एक बनियान थी और कोई सिर्फ़ एक लुगी बांधे ही अपने रात के उलझे बालों में उँगलियाँ घुसेड़ रहा था। कुछ सवारियाँ तांगे के अड्डे पर किराया तय कर रही थी।

देवू धीरे-धीरे चाय का प्याला होठो से लगाता और थोड़ी-थोडी चाय की चुस्कियाँ लेता, एक साथ ही जल्दी-जल्दी चाय खत्म कर देने की उसकी इच्छा नही थी। फिर उसने बीडी सुलगायी और सामने आनन्द पर्वत की पहाड़ियों की ओर देखते हुए बीड़ी के कश खीचने लगा। आसमान साफ था और सूरज की किरणों में धीरे-धीरे गर्मी बढने लगी थी।

अचानक धीरजसिंह उसके पास वाली कुर्सी पर आकर बैठ गया और उसने अपनी एक बाँह देवू के गले में डाल दी। देवू ने धीरजसिंह की बाँह का पसीना अपनी गरदन पर अनुभव किया।

"सुना यार देवू, आजकल तो सुना है, तू काफी कमाने लगा है। अब तो बचनसिंह तुझे अच्छे पैसे देता है, कल ही वह मुझसे कह रहा था...।" यह कहकर मुसकराते हुए उसने देवू की ओर देखा।

"क्या कह रहा था बचनसिंह ?" देवू ने चाय का अंतिम घूंट पीते हुए पूछा।

"तू उससे कहना मत, उसने मुझे कसम दिलवायी थी कि मैं तुझसे नहीं कहूँगा, लेकिन यार तुमसे क्या परदा है—लेकिन कहना मत, नही तो वह मुझ पर गुस्सा होगा और शायद मुख्तारसिंह से मेरी शिकायत भी कर दे...।"

"तू डरता क्यो है, मैं बचनसिंह से नही कहूँगा।"

"मुझे तेरी बात का भरोसा है। वह कहता था कि जब वह दुकान पर नही होता तो पचर या हवा भरवाने के पैसे शायद तू अपने पास रख लेता है...।" धीरजसिंह देवू की आँखों की तरफ़ देखकर कह रहा था।

देवू चौंक पड़ा, जिससे धीरजसिंह को अपनी बाँह उसके गले से उठानी

पड़ी—"क्या वचनसिंह मुझे चोर समझता है...?"

"अरे तू ग़ुस्सा क्यों होने लगा? वह तो कहता था कि उसका ऐसा ख़याल है। शायद सच न हो। तू उसकी वात का बुरा मत मानना। मुँह से चाहे वह जो कुछ कह ले, लेकिन दिल का वह साफ़ है...।"

"हुँ...सो वह मुझे चोर समझता है! मैं उसकी ग़ैरहाज़िरी में उसके पैसे अपने पास रख लेता हूँ! मैं कल ही उसकी नौकरी छोड़ दूँगा।" देवू ने वीड़ी का एक कश खींचकर उस टुकड़े को दूर फेंक दिया।

"क्यों पागलों की-सी वातें कर रहा है, वचनसिंह की नौकरी छोड़ देगा तो और कहीं काम मिलेगा तुझे? देखता नहीं है, आजकल कितनी वेकारी फैल रही है, कल एक 22 साल का वेकार लड़का कुतुव से कूदकर मर गया...!" धीरजसिंह ने फिर अपना नंगा हाथ देवू की पीठ पर रख दिया और उसकी ओर देखकर कहने लगा, "और तू समझता है कि तू वचनसिंह की नौकरी छोड़ देगा!"

देवू ने अपनी गरदन हिला दी और चुपचाप विना धीरजसिंह की ओर देखे वह सामने धूप में चमकते पीले-पीले रेत और धूल से भरे आनन्द पर्वत के टीलों की ओर देखता रहा, जिस पर फ़ौजी वैरकों की लंवी-लंवी टीन की छतें चमक रही थीं। धीरजसिंह के सामने कहने को तो देवू कह गया था कि वचनसिंह की नौकरी छोड़ देगा, परंतु मन में वह सोच रहा था कि आख़िर वचनसिंह को उस पर शक पड़ ही गया। लेकिन उसने कभी भी महीने में दो-तीन वार दो-चार आनों से अधिक पैसे अपनी जेब में नहीं रखे। उससे ज़्यादा रखने का उसमें साहस ही नहीं था, कहीं अगर रात पड़ने पर वचनसिंह उसकी जेवों की तलाशी ले लेता और पैसे उसकी जेव में मिलते तो वह नौकरी से वर्ख़ास्त करने के अतिरिक्त नानकचन्द से उसकी चोरी की वात कहता और वस्ती में उसे वदनाम करता। इसी डर से कभी देवू ने चोरी से ज़्यादा पैसे वचनसिंह की अनुपस्थिति में नहीं छिपाये थे।

"मुक्खासिंह अपना व्याह करने की सोच रहा है, वातचीत भी उसने पक्की कर ली है, अव तो सरदारनीजी घर आ जायेंगी। मैं सोचता हूँ कि शायद फिर मुझे अकेले देखकर वह मेरे लिए भी कोई लड़की ठीक कर ले।" और धीरजसिंह ने अपने वालों के जूड़े में से लटकती लटें फिर वालों

में ठूँसते हुए कहा—"रात को सोते वक़्त मैं कितनी ही देर तक उस दिन के ख़्वाब देखा करता हूँ। मुख्तासिंह ज़रूर कोई मेरे लिए भी ठीक कर देगा...।"

लेकिन देबू के कानों में ये सब बातें बाहर से ही टकराकर लौट रही थी। उसे साइकिल की दुकान पर नौकरी करना बिलकुल पसंद नहीं था, एक के बाद एक साइकिल के पंचर लगाना, ब्रेकों को ठीक करना, पम्प से हवा भरना...उसकी साँस फूल जाती थी, उसके हाथ गंदे हो जाते थे, सर्दियों में उसकी उँगलियों मे रात-दिन दर्द होने लगता था।

तभी स्टाल पर दो व्यक्ति और आकर बैठ गये और उन्होंने दो प्याले चाय माँगी। धीरजसिंह उछलकर बडे चूल्हे के पास जाकर बैठ गया और केतली मे पानी चढाने लगा। देबू ने एक बार धीरजसिंह की ओर देखा और उसे धीरजसिंह की ज़िंदगी से ईर्ष्या होने लगी—वह कितने मज़े से सारा दिन अपनी दुकान के सामने बैठा चाय के प्याले और कोकाकोला में बर्फ़ डालकर उसके गिलास बनाता रहता है, उसे कही भागना-दौडना नही पड़ता, और जब उसकी मर्ज़ी आये तो चाय का प्याला या स्वयं शर्बत का एक गिलास चढा ले। उसे रोकने वाला भी कोई नही है। मुख्तासिंह उस पर शक नही करता, क्योंकि वह उसका भाई है। काश कि हुकम भी इसी तरह की कोई दुकान खोल लेता तो वह बचनसिंह की नौकरी छोडकर उसकी दुकान पर काम करता।

देबू थोड़ी देर बाद उठ खडा हुआ। यकायक आज इतवार होने की बात उसके दिमाग में बिजली की भाँति दौड गयी और वह कोशिश करने लगा कि आज की छुट्टी का वह उपयोग करे, नही तो अगले छः दिनो मे उसे छुट्टी की कल्पना करने की भी फ़ुर्सत नही मिलेगी। वह धीरजसिंह से की हुई सब बातें भूल गया। उसने जेब में रखे बीड़ी के पैकेट में से एक और बीडी निकाली और उसका धुआँ छोडता हुआ वापिस अपनी बस्ती की ओर लौट पड़ा। आगे जाकर अपने को व्यर्थ में ही थकाने का प्रोग्राम उसे पसन्द नही आया। हवा ज़रा ज़ोर से चलने लगी थी, लेकिन आसमान बिलकुल साफ़ था, मटमैले से रंग का। गर्मी की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी।

वस्ती के नुक्कड़ पर उतराई समाप्त होने के पश्चात एक घने जामुन के पेड़ के नीचे वचनसिंह की साइकिलों की मरम्मत करने की छोटी-सी झुग्गी में वनी एक दुकान थी, जिसके दरवाज़े के सामने एक टीन के वोर्ड पर स्कर्ट्स पहने, होंठों और गालों पर गहरी लाली लगाये और कटे हुए बाल वाली एक यूरोपियन युवती की साइकिल के साथ एक तसवीर वनी थी, जिसमें साइकिल की अपेक्षा उस यूरोपियन युवती का अधिक विज्ञापन होता था और सड़क पर चलते लोगों की दृष्टि अनायास ही उस चमकते गहरे रंगों वाले वोर्ड की ओर आकर्षित हो जाती थी। पेड़ की झुकी हुई कुछ शाखाओं पर साइकिल के पुराने टायर और ट्यूब लटके रहते थे और उनके नीचे एक वोरी के टुकड़े पर हवा भरने का पम्प, दूसरे औज़ार और पंचर लगाने के लिए एक चौड़े से तसले में गंदा पानी भरा रहता था। वचनसिंह झुग्गी के सामने एक कुर्सी पर वैठा रहता और ख़ाली समय में कभी ग्रन्थ-साहव ज़ोर से पढ़ता या लोगों को ताका करता था, और देवू वोरी के टुकड़े पर। जव ग्राहक अधिक संख्या में आते तव वह देवू का हाथ वँटाने के लिए यहाँ आ जाता और जव किसी साइकिल का ओवरहालिंग करना होता तो वह झुग्गी के सामने कभी पहियों की सफ़ाई करता और कभी साइकिल को उलटा खड़ा करके उनके पहियों और ब्रेकों को ठीक तरह से सीधा लगाने की कोशिश करता, कभी साइकिल में कोई नया पार्ट दिखायी देने पर वह उसे निकाल लेता और उसके वदले दुकान में से एक डिब्वे से वैसा ही कोई पुराना पुर्ज़ा लगा देता, तव उसकी आँखों में एक हँसी चमक उठती थी और काम समाप्त करने के वाद वड़े उत्साह से वह ज़ोर से ग्रंथ-साहव पढ़ता, या देवू से वातें करने लगता।

उस सड़क पर रोज़ ही सवेरे दफ़्तरों में काम करने वाले क्लर्क, ख़ाकी वर्दियाँ पहने चपरासी और कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्र अपनी साइकिलों पर वड़ी तेज़ी से उतराई पर उतरते। मोटरों, ताँगों और वैलगाड़ियों का ताँता भी वँध जाता और कभी साइकिलों की घंटियाँ, कभी मोटरों के हॉर्न और कभी ताँगे वालों के 'वचना वावूजी', 'वादशाहो, ज़रा दायें चलो', 'मिस साहेव ज़रा संभलना' की आवाज़ों से सड़क गूँजा करती। ज्यों-ज्यों सूरज आसमान की छत की ओर वढ़ता, त्यों-त्यों लोगों का ताँता कम होता

जाता। शाम को फिर वही घर लौटने वालों की भीड। इस बार साइकिल वाले चढाई देखकर साइकिलो से उतर जाते, परन्तु कोई अपनी ताकत का प्रदर्शन करने के लिए गद्दी से इच ऊपर उठकर अपनी पूरी शक्ति के साथ पैडल मारता हुआ अपनी विजय पर मुसकराता हुआ चढाई के ऊपर तक जा पहुँचता और पेट्रोल-पम्प के पास पहुँचकर उसकी जान मे जान आती। लोगों के थके पीले चेहरों, निस्तेज आँखो, और झुकी गरदनों में घर पहुँचने की ऐसी लालसा होती थी जो उनको चढाई चढ़ने पर भी थकाती नही थी। फिर शाम को घूमने वालों की टोलियां शहर की ओर जाती दिखायी देती। चमकते जूते, रेशमी बुशर्ट, साफ-सुथरी सफेद पतलूनें, अनेक रंगो की साड़ियां, नये-नये फैशन की चोलियां और सैंडल और पाउडर, क्रीम और लिपिस्टिक की मीठी सुगध लोगो की आँखो को पल-भर के लिए चकाचौध कर देती, पेड़ो पर परिदे चहकने लगते, अँधेरे की छाया धीरे-धीरे गहरी होती जाती और सडक के दोनों ओर लगे लैप-पोस्टों मे धुंधली बिजलियाँ चमकने लगती। दूर से चढाई की ये रोशनियां आसमान के सितारो से कम नही मालूम देती थी।

देवू पिछले 15 मिनटों से बेकार, बोरी के टुकडे पर अपने घुटनो पर ठुड्डी टिकाये बैठा था। उसकी बाँहें कोहनियों तक तेल, ग्रीज और धूल में सनी हुई थी और उसके कुछ निशान उसके पसीने से भरे माथे और गालों पर भी लगे हुए थे। वह चुपचाप अँधेरी सड़क पर भीड को देख रहा था, परन्तु उसका ध्यान कही और था। उसकी आँखें खुली हुई थी, उसके मन के विचारों के साथ सडक की भीड से बहुत दूर विचरण कर रही थी। बचनसिंह ने कभी अपना शक उस पर ज़ाहिर नही किया और वह जाकर धीरजसिंह से उसके बारे मे बातें कह आया। लेकिन शायद वह दिल का साफ़ है, तभी ग्रथसाहब का पाठ इतनी ज़ोर-ज़ोर से किया करता है, लेकिन जब तक सड़क की बत्ती नही जल जाती तब तक वह अपनी दूकान बन्द नही करता, चाहे दूकान पर एक भी ग्राहक न आये। कल उसने चवन्नी छिपाकर छोड़ दी, किन्तु जब बचनसिंह को उस पर शक है ही तो फिर वह उसका फ़ायदा क्यों न उठाये?

"क्या थक गया, देवू?" बचनसिंह अपनी कुर्सी से उठकर देवू के पास

आकर खड़ा हो गया। उसके चेहरे और घनी मूंछों और दाढ़ी पर दिन की उड़ती धूल जम गयी थी और जब वह बोलता था तो उसके दांत चमकने लगते थे।

देबू ने अपना सिर उठाकर बचनसिंह की ओर एक बार ध्यान से देखा और यह जानने की कोशिश की कि कहीं इस तरह बातें करके वह अन्दर की बातें जानने की कोशिश तो नहीं कर रहा है!

"हूं, इस साइकिल की दुकान से कुछ नहीं बनता। सरदारनी मेरा दिमाग़ चाटा करती है, कभी नयी साटन की शिलवार बनानी है तो कभी नया जूता ख़रीदना है, वह अभी तक अपने-आपको जवान समझती है और रोज़ रात को सोने से पहले सज-बनकर तैयार हो जाती है जैसे कोई नयी ब्याही दुलहन है...हूं...!" यह कहकर उसने एक ज़ोर का ठहाका लगाया। "मेरा क्या, मैं तो हर साल एक बच्चा पैदा कर दूं...अभी मुझमें इतनी ताक़त है।" और उसने अपनी मूंछों पर ताव दिया और फिर सामने अंधेरी सड़क की ओर देखकर कहने लगा, "लेकिन बच्चों को खिलाऊं कैसे? तू मेरे बड़े लड़के सोहनसिंह को जानता है, देबू? इतना आवारा बन गया है कि क्या कहूं, सब गली वालों से लड़ता है, कल एक का सिर फोड़ दिया, वह तो मैंने मामला दबा दिया, नहीं तो पुलिस पकड़कर ले जाती और... और सरदारनी रोज़ रात को सज-बनकर तैयार हो जाती है और मुझे ललचाती है...।"

सड़क पर बत्तियां जल गयी थीं, जिनकी धीमी रोशनी में सड़क पर चढ़ाई चढ़ते लोग अदृश्य लोगों की परछाइयों-से जान पड़ते थे। उनकी धीमी चाल लड़ाई से लौटती हुई पराजित सेना की भांति थी, जो निराश हुए अपने घरों को थके-मांदे वापस लौट रहे हों।

देबू उठ खड़ा हुआ और चुपचाप बोरी पर बिखरे औज़ारों को लकड़ी के बक्से में रखने लगा। बचनसिंह उसके पास ही खड़ा उसे काम करते हुए देखता रहा, कभी-कभी वह देबू की सहायता कर देता था और कभी इस प्रकार चुपचाप खड़ा उसे देखा करता था।

"अब चलो सरदारजी, रोशनियां जल गयीं।" देबू ने बक्से का ताला लगाते हुए कहा।

"रोशनियाँ जल गयीं, अब कोई ग्राहक नहीं आयेगा।"

बक्से को झुग्गी मे रख देवू अपने घर की ओर रवाना हो गया। रास्ता काटने के लिए उसने एक बीडी सुलगाने की सोची, परन्तु फिर थकान और भूख मे बीड़ी का मजा न पाने के विचार से उसने अपनी जेब में हाथ नही डाला। उसके पैर मशीन की भांति चढ़ाई के फ़ुटपाथ पर आगे बढ़े जा रहे थे, वह अनुभव कर रहा था मानो उनमे जान न हो। कभी-कभी नीचे की ऊबड़-खाबड़ झाड़ियो में शोर मचाती हुई हवा के झोकों से उसके चेहरे का पसीना सूख जाता था और देवू एक लबी साँस लेता था। सडक पर लोगों की भीड़ शहर से लौट रही थी जिनमें कुछ चपरासी, कुछ क्लर्क, कुछ मजदूरों की टोलियाँ और शाम की पढाई पढ़ने के बाद कैंप कॉलेजों से लौटते हुए छात्र थे। मोटरों और बसों की तेज रोशनियों से काली कोलतार की सड़क रह-रहकर चमक उठती थी।

देवू को इस भीड़ में से किसी में भी दिलचस्पी नही थी। वह अपने ही विचारों मे मग्न सड़क पर चला जा रहा था। कभी-कभी दायीं ओर बने फ़्लैटों की कतारों की ओर वह देख लेता था, किसी मकान मे रेडियो में से गाने की आवाज बाहर तक आ रही थी और किसी मकान के सामने बाग में आराम-कुर्सियों पर बैठे लोग लैमनस्क्वैश या ऑरेंजस्क्वैश या बियर पीते हुए परस्पर बातचीत में मग्न थे। दिन-भर की गर्मी के कारण अदर बंद रहने के बाद अब वे खुली हवा मे आकाश के नीचे अपने मनोरंजन मे व्यस्त थे। पहाड़ न जाने के कारण यही उसका आनन्द उठा लेना चाहते थे।

पेट्रोल-पम्प से थोडी दूर पहले ही बायीं ओर उसने नीचे झुग्गियों की ओर जाने की एक पगडंडी पकड़ी। अधकार का पूरा साम्राज्य अभी तक बस्ती में नही जम पाया था। इक्की-दुक्की झुग्गी के भीतर मिट्टी के तेल की लालटेन या दीप जगमगाता दिखायी दे रहा था। हवा चलने से किसी झुग्गी की छत पर संभाल-संभाल कर सँजोये गदे चीथड़ो के टुकड़े हवा में उड़ने लगते थे।

घर से देवू तौलिया उठाकर साबुन की टिकिया हाथ में दबाये सीधा तालाब के पास नल पर नहाने के लिए चला गया। यद्यपि थकान और भूख के साथ नल तक जाने और फिर वहाँ बैठ कर साबुन से सारा शरीर

रगड़ने की हिम्मत उसमें नहीं थी, परंतु दिन-भर पसीने के ऊपर जो धूल की तहें जम गयी थीं उनसे छुटकारा पाने के लिए उसने स्नान करना आवश्यक समझा।

"देवू देवू...!" देवू ने किसी को पीछे से अपना नाम पुकारते सुना। उसने पीछे मुड़कर देखा तो भोला उसकी ओर बड़ी तेज़ी से अपने क़दम आगे बढ़ाये चला आ रहा था।

"कैसा है भोला, बहुत दिनों से दिखायी नहीं पड़ा!" भोला के आने पर देवू फिर नल की ओर पाँव बढ़ाने लगा।

भोला की अवस्था बारह वर्ष से अधिक नहीं थी। सारी बस्ती में भोला एक ऐसा प्राणी था जिसकी कोई झुग्गी नहीं थी, जिसके माँ-बाप, भाई-बहन, घर-बार—कुछ नहीं था, किसी को उसके अतीत का पता नहीं था। जिस प्रकार बस्ती में कितने ही कुत्ते, बिना दूध देने वाली लावारिस गायें, बछड़े आदि थे उसी प्रकार भोला भी झुग्गियों के चक्कर ही काटा करता था, कोई उसे सुबह रोटी दे देता तो कोई शाम के खाने के बाद बची जूठन उसके सामने लाकर रख देता। पिछले जाड़ों में उसे सर्दी से ठिठुरता देखकर नानकचन्द ने उसे अपनी दुकान से एक पुराना बड़ा-सा कोट दे दिया था, जिस पर सुभागी ने उस दिन घर पर तूफ़ान मचा दिया था और नानकचन्द के दानी स्वभाव की दुहाई दी थी, और फिर अगले दिन सारी बस्ती में वह सुना आयी थी कि उसने तरस खाकर भोला को गरम कोट दे दिया है।

"वाह देवू, अभी चार दिन पहले तो तूने मुझे एक बीड़ी पिलायी थी। तू बहुत जल्दी भूल जाता है।" भोला ने कहा।

"हाँ, याद आ गया, भोला...। तेरे गानों का क्या हाल है, तूने कोई नये गाने सीखे?" देवू ने भोला की ओर देखकर पूछा।

भोला अपने फ़िल्मी गानों के लिए सारी बस्ती में मशहूर था। देवनगर जाकर वह चाय के स्टालों या पान-बीड़ी वालों की दुकानों के सामने खड़ा हो जाता था और रेडियो में चलते फ़िल्मी गानों के रिकॉर्ड बड़े ध्यान से सुना करता। पाँच-छः बार एक गाना सुनने पर उसे थोड़ी-बहुत ग़लत-सलत तान याद हो जाती थी और फिर वह बस्ती वालों के सामने गानेगाया

करता था। बस्ती के लोग भी दिन-भर की थकान मिटाकर जब अपनी चारपाइयों पर लेट जाते तो कभी भोला को वहां से गुजरते देखकर उसे आवाज़ लगाकर बुला लेते और उसके गाने सुना करते थे और उसके गाने की तारीफ़ें किया करते थे।

"अभी कोई नया गाना नही सीखा है, मैं देवनगर गया ही नहीं। दीनू मामा की दीवार गिर पड़ी थी, सो सारा दिन मैं उनके साथ काम करता रहा...।"

"क्या तूने दीनू चाचा की दीवार बनाने मे काम किया...?" देवू ने आश्चर्य से भोला की ओर देखकर पूछा—"और अभी छ -सात दिन पहले उन्होंने जो तुझे पीटा था वह बात भूल गया.. तब तो तू उन्हे बाद मे गालियाँ दे रहा था और कहता था कि अब तू उनका कभी मुंह तक नही देखेगा...और अब तूने उनकी झुग्गी की दीवार उठायी, छि .. !" यह कहकर देवू ने एक शिला पर थूक दिया।

भोला थोडी देर तक चुप सुनता रहा। उसने देवू की ओर देखा तक नही। फिर धीमे स्वर मे कहा, "शाम को दीनू चाचा ने चवन्नी दे दी थी...।"

"हूं...!" देवू को क्रोध आ रहा था।

थोडी दूर अँधेरे मे तालाब के एक कोने की गहरी छाया दिखायी दे रही थी, काई की इतनी मोटी तह जम गयी थी कि दूर से एक हरे-भरे बाग़ होने का संदेह होने लगता था। उसके ऊपर ही लगे पेडों की कुछ टहनियाँ झुककर तालाब के पानी को स्पर्श करने का प्रयास कर रही थी। उसमे भी ऊपर एक टीले पर सफ़ेद रग का एक मदिर बना था, जिसके अदर हनुमान की एक लाल मूर्ति थी और मदिर के ऊपर एक लाल झडा पतले बाँस में लिपटा हुआ दूर से दिखायी देता था। मदिर के पास ही एक पेड की डालियों पर कितने ही रंगों के कपडों के चिथडे बँधे हुए थे। सारी बस्ती मे यह बात मशहूर थी कि किसी बात का शक होने पर जब बडी भक्ति के साथ हनुमानजी की पूजा करने के बाद जो व्यक्ति इस पेड़ की डाल पर कोई कपड़ा बांध जायेगा तो उसकी मनोकामना पूरी हो जायेगी और बस्ती में इन मनोकामनाओं की इच्छा रखने वालों की कमी नही थी। लोग एक के

बाद एक फ़रमाइशें लेकर पेड़ पर कोई फटा-पुराना रंगीन कपड़े का चिथड़ा बाँध जाते थे।

"जा, तू मेरे साथ-साथ क्यों चला आ रहा है ? मैं तो नहाने जा रहा हूँ।" देवू ने बिना भोला ओर की देखे कहा।

परंतु भोला फिर भी देवू के साथ चलता रहा। वह कुछ नहीं बोला।

देवू ने समझा कि शायद भोला एक बीड़ी के लालच में उसके साथ आ रहा है और उसे ग़ुस्सा देखकर अभी तक उसे बीड़ी माँगने का साहस उसे नहीं हुआ। देवू ने फिर उसी लापरवाही के साथ पूछा, "बीड़ी पियेगा ?"

"नहीं...!" भोला ने तीव्र स्वर से उत्तर दिया।

अचानक ही उसके स्वर में देवू ने ऐसा कम्पन और रुँधापन अनुभव किया कि उसका हृदय भोला के लिए दर्द से भर आया। आख़िर भोला का इस दुनिया में कौन है, कल को अगर वह बीमार पड़ जाये तो उसके लिए कोई दवा लाने वाला भी नहीं है, अगर वह मर जाये तो उसकी लाश को जलाने का कष्ट भी शायद कोई न करे। उसका घर नहीं, माँ-बाप नहीं...! "अच्छा भोला, तूं यहीं बैठ, मैं अभी नहाकर आता हूँ। फिर हम इकट्ठे बीड़ी पियेंगे। ले, मेरी कमीज़ ज़रा अपने पास रख ले, नल पर तो इतनी भीड़ है कि कोई कमीज़ उठा भी ले तो पता न लगे।"

भोला ने चुपचाप देवू की कमीज़ को अपनी बग़ल में दबा लिया और नल पर पानी भरने वालों और नहाने वालों की भीड़ की ओर चुपचाप देखने लगा। देवू ने उसकी भरी हुई आँखें देखीं।

देवू नल के पास जाकर पानी भरने वालों की क़तार में खड़े स्त्री-पुरुषों को देखने लगा। नल के पास ही बस्ती की कुछ स्त्रियाँ अपनी बालटियों और टीन के कनस्तरों में पानी भर कर एक-दूसरे से बातें करती हुई नहा रही थीं। पुरुष नल के पास ही खड़े बालटियों का पानी अपने शरीर पर उँड़ेल रहे थे। देवू ने सोचा था कि वह अँधेरे में नल पर भीड़ न होने के कारण नल की धार के नीचे बैठकर शांति से नहाता रहेगा और उसके शरीर की सारी धूल पानी के साथ बह जायेगी, लेकिन यहाँ एक बालटी अपने ऊपर डालना भी उसे असंभव-सा प्रतीत होने लगा। थकान से उसका शरीर टूट रहा था।

देवू कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा, जिससे थोड़ी भीड़ हटने पर वह आगे बढकर किसी की बालटी माँग ले और फिर वहीं बैठकर पानी डाल-डालकर अपने शरीर को रगड़े। तालाब की ओर देखकर उसने सोचा कि आज इसमे साफ़ पानी होता तो वह कितनी ही देर तक उसमें तैरता रहता और किनारे पर खडा होकर बदन में साबुन लगाता, लेकिन यह तो अब सिर्फ भैंसों के नहाने की जगह रह गयी है।

तभी औरतों के झुंड में उसे अपनी भाभी कौशल्या भी नहाते हुए दिखायी दी। देवू ने एक बार ध्यान से उस ओर देखा। कौशल्या की धोती के नीचे उसका बड़ा-सा फूला पेट आगे की ओर उभरा आ रहा था, मानो किसी ही क्षण फट जायेगा। उसकी गीली धोती बदन से चिपक गयी थी और ऊपर के भाग पर सिर्फ़ साड़ी का पल्ला होने से उसकी फूली छातियाँ झाँक रही थीं। कभी-कभी मर्दों के झुड को अपनी ओर घूरते देखकर कोई युवती मुसकराकर अपनी पीठ मोड लेती थी और अपनी धोती से अपने शरीर को और भी ज्यादा कस लेती थी।

"हूं, कैसा जमाना आ गया है !" अधेड-सी अवस्था का एक व्यक्ति नल पर खड़े लोगों को स्त्रियो के झुड की ओर घूर कर परस्पर मुसकराते हुए लोगों को देखकर कहने लगा, "किसी को भी आज कुछ शरम नही रह गयी है। खुलेआम इस तरह नंगी औरतो को घूरना ..हू...!"

कुछ युवक और भी मुसकराने लगे और एक ने जोर का ठहाका लगाया, "मंगतरामजी शायद अपनी जवानी के दिन भूल गये।"

दूसरे ने कहा, "सारा दिन फैक्टरी मे काम करते-करते मेरी कमर टूट जाती है, अगर शाम को ऐसे नजारे देखने को न मिलें तब तो मैं एक ही दिन मे मर जाऊँ।"

"मेरी सगाई हो गयी थी और मैं सोचता था कि ब्याह के बाद अब मैं सब कुकर्म छोड़ दूँगा,लेकिन...ससुर जी को बाद में एक मुझसे अच्छा दामाद मिल गया...अब शायद मेरा घर कभी नही बसेगा।" यह कहकर उसने बालटी का रहा-सहा पानी अपने ऊपर उंडेल लिया।

"मैं तेरी जगह होता तो उस साले का खून कर देता जो मेरी मंगेतर को ब्याहता। हूं—तू नामर्द है...।"

किसी ने वदन पोंछते हुए एक गाना शुरू कर दिया।

देवू भी चुपचाप कभी मर्दों और कभी औरतों के झुंड की ओर देख रहा था। उसने एक से वालटी माँग ली और थोड़ी दूर जाकर एक पत्थर पर बैठकर टाँगों, वाँहों, पैर और मुँह पर पानी डालकर उसे साबुन से रगड़ने लगा।

स्नान करके देवू की वहुत-सी थकान दूर हो गयी। वह भोला के साथ तालाव के ऊपर एक टीले के ऊपर बैठ गया। देवू की थकान दूर हो गयी थी। दोनों ने वीड़ियाँ सुलगायीं। हवा चलने लगी थी और ऊपर लगे पेड़ की धूल से भरी पत्तियाँ खड़खड़ाने लगी थीं।

"भोला, तू कोई गाना सुना, कोई नया फ़िल्मी गाना...।"

गाने की फ़रमाइश करते ही भोला गाना शुरू कर देता था, मानो इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हो। "मैंने एक नया गाना सीखा है देवू, वही सुनाता हूँ। मैंने अभी-अभी परसों ही इसे धीरजसिंह की दूकान पर सुना था।"

"कोई भी सुना, भोला !"

भोला गाने लगा...उसकी आवाज़ टीलों से टकरा-टकराकर गूँजने लगी।

परन्तु देवू का ध्यान गाने की ओर से कव दूर हटकर अपनी सीमाओं से दूर पहुँच गया, इसका पता उसे नहीं चला। वह सामने वस्ती से दूर आसमान के नीले-पीले पर्वत की उठी हुई पहाड़ियों की ओर देख रहा था। समतल भूमि में ऊँची उठी हुई आनन्द पर्वत की ये पहाड़ियाँ, जो दिन की कड़कड़ाती धूप में रेगिस्तान के समान चमका करती थीं। काश कि मैं उस पहाड़ी पर किसी मकान में रहता होता, जहाँ से रात को किसी ऊँची जगह पर बैठकर विखरी वस्ती को देख सकता ! आनन्द पर्वत पर हवा भी कितनी तेजी से चलती है, मानो दूर तक तूफ़ान आता रहता हो। पर्वत पर पगडंडियों से चढ़ते समय वड़ा अजीव-सा मालूम होता है।

देवू चौंक पड़ा। उसे मालूम नहीं पड़ सका कि भोला ने अपना गाना कव समाप्त कर लिया। वह चुपचाप भोला की ओर ताकने लगा।

"परसों धीरजसिंह कह रहा था कि अगर मैं थोड़े गाने और सीख लूं तो ..।"

देवू ने बिना भोला की ओर देखे कहा, "तो तू गाना सिखाने वाला मास्टर बन जायेगा ?"

"नही देवू, वह कहता था कि मैं फिल्मों मे गाने गा सकता हूँ. जैसे दूसरे लोग गाते हैं। क्या ऐसा हो सकता है, देवू ?" भोला बडी उत्सुकता से देवू की ओर देख रहा था।

"क्यों नही हो सकता ?" देवू ने गभीर भाव से कहा, "तब तो तुझे बम्बई जाना पडेगा, भोला। जब तू फ़िल्मो मे गाने लगेगा तो तुझे हज़ारों रुपये मिलेंगे, तब तू बँगलो में रहने लगेगा। फिर तुझे दीनू चाचा की गिरती दीवार भी नही बनानी पडेगी. ।"

"नही देवू, तू हँसी कर रहा है।" भोला ने चिंतित भाव से कहा।

"तू थोडे गाने और सीख ले और फिर बम्बई चला जा।" देवू सामने तालाब की ओर देखकर कह रहा था। तालाब के दृश्य मे देवू को एक प्रकार की ममता भी हो गयी थी। जब उसकी जेब मे पैसे नही होते थे और वह धीरजसिंह की दूकान पर बैठकर चाय नही पी सकता था तो यहीं आकर बैठ जाता था।

थोड़ी देर बाद देवू अपनी झुग्गी की ओर आया और भोला देवनगर की तरफ़ चला गया।

हुकम झुग्गी के बाहर एक पेड़ के नीचे चट्टान पर बैठा चाकू से बांस को छील रहा था, और उसके चारो ओर बस्ती में रहने वाले लडके उसे घेर कर बैठे हुए थे।

बांस पर चाकू से छोटे-छोटे छः सूराख कर आसानी से वह बांसुरी बना देता था और बस्ती में रहने वाले लड़के हमेशा ही हुकम से अपने लिए बांसुरी बनाने की फरमाइश किया करते थे। जब वह कोई काम करता होता तब छुट्टी वाले दिन तड़के ही वह इस चट्टान पर आकर बैठ जाता था

किसी ने वदन पोंछते हुए एक गाना शुरू कर दिया।

देवू भी चुपचाप कभी मर्दों और कभी औरतों के झुंड की ओर देख रहा था। उसने एक से वालटी माँग ली और थोड़ी दूर जाकर एक पत्थर पर वैठकर टाँगों, वाँहों, पैर और मुँह पर पानी डालकर उसे सावुन से रगड़ने लगा।

स्नान करके देवू की वहुत-सी थकान दूर हो गयी। वह भोला के साथ तालाव के ऊपर एक टीले के ऊपर वैठ गया। देवू की थकान दूर हो गयी थी। दोनों ने वीड़ियाँ सुलगायीं। हवा चलने लगी थी और ऊपर लगे पेड़ की धूल से भरी पत्तियाँ खड़खड़ाने लगी थीं।

"भोला, तू कोई गाना सुना, कोई नया फ़िल्मी गाना...।"

गाने की फ़रमाइश करते ही भोला गाना शुरू कर देता था, मानो इस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हो। "मैंने एक नया गाना सीखा है देवू, वही सुनाता हूँ। मैंने अभी-अभी परसों ही इसे धीरजसिंह की दूकान पर सुना था।"

"कोई भी सुना, भोला !"

भोला गाने लगा...उसकी आवाज़ टीलों से टकरा-टकराकर गूँजने लगी।

परन्तु देवू का ध्यान गाने की ओर से कव दूर हटकर अपनी सीमाओं से दूर पहुँच गया, इसका पता उसे नहीं चला। वह सामने वस्ती से दूर आसमान के नीले-पीले पर्वत की उठी हुई पहाड़ियों की ओर देख रहा था। समतल भूमि में ऊँची उठी हुई आनन्द पर्वत की ये पहाड़ियाँ, जो दिन की कड़कड़ाती धूप में रेगिस्तान के समान चमका करती थीं। काश कि मैं उस पहाड़ी पर किसी मकान में रहता होता, जहाँ से रात को किसी ऊँची जगह पर वैठकर विखरी वस्ती को देख सकता ! आनन्द पर्वत पर हवा भी कितनी तेज़ी से चलती है, मानो दूर तक तूफ़ान आता रहता हो। पर्वत पर पगडंडियों से चढ़ते समय वड़ा अजीव-सा मालूम होता है।

देवू चौंक पड़ा। उसे मालूम नहीं पड़ सका कि भोला ने अपना गाना कव समाप्त कर लिया। वह चुपचाप भोला की ओर ताकने लगा।

"परसों धीरजसिंह कह रहा था कि अगर मैं थोड़े गाने और सीख लूँ तो...।"

देबू ने बिना भोला की ओर देखे कहा, "तो तू गाना सिखाने वाला मास्टर बन जायेगा ?"

"नही देबू, वह कहता था कि मैं फिल्मों मे गाने गा सकता हूँ. जैसे दूसरे लोग गाते है। क्या ऐसा हो सकता है, देबू ?" भोला बडी उत्सुकता से देबू की ओर देख रहा था।

"क्यो नही हो सकता ?" देबू ने गभीर भाव से कहा, "तब तो तुझे बम्बई जाना पडेगा, भोला। जब तू फ़िल्मो मे गाने लगेगा तो तुझे हजारों रुपये मिलेंगे, तब तू बँगलों में रहने लगेगा। फिर तुझे दीनू चाचा की गिरती दीवार भी नही बनानी पडेगी. ।"

"नहीं देबू, तू हँसी कर रहा है।" भोला ने चिंतित भाव से कहा।

"तू थोडे गाने और सीख ले और फिर बम्बई चला जा।" देबू सामने तालाब की ओर देखकर कह रहा था। तालाब के दृश्य मे देबू को एक प्रकार की ममता भी हो गयी थी। जब उसकी जेब मे पैसे नही होते थे और वह धीरजसिंह की दूकान पर बैठकर चाय नही पी सकता था तो यहीं आकर बैठ जाता था।

थोड़ी देर बाद देबू अपनी झुग्गी की ओर आया और भोला देवनगर की तरफ़ चला गया।

हुकम झुग्गी के बाहर एक पेड़ के नीचे चट्टान पर बैठा चाकू से बाँस को छील रहा था, और उसके चारों ओर बस्ती मे रहने वाले लडके उसे घेर कर बैठे हुए थे।

बाँस पर चाकू से छोटे-छोटे छः सूराख़ कर आसानी से वह बाँसुरी बना देता था और बस्ती मे रहने वाले लडके हमेशा ही हुकम से अपने लिए बाँसुरी बनाने की फरमाइश किया करते थे। जब वह कोई काम करता होता तब छुट्टी वाले दिन तड़के ही वह इस चट्टान पर आकर बैठ जाता था

और छोटे-बड़े लड़के उसे चारों ओर से घेरे उससे नाना प्रकार की बातें पूछा करते थे और वह तेज़ चमकते चाकू की नोंक से बाँस में सूराख़ बनाया करता था, छोटे-छोटे गोल सूराख़...।

"मेरे लिए उस मोटे बाँस की बाँसुरी बनाना...।"

"मेरी बाँसुरी में छः छेद करना...।"

"और मेरी बाँसुरी कब बनाओगे, हुकम भैया, कल भी तुमने टाल दिया था।" एक ने शंका-सी आवाज़ में कहा।

हुकम सबके जवाब देता, किसी की ओर देखकर मुसकरा उठता। जब कभी किसी की बाँसुरी बनकर तैयार हो जाती तो हुकम उस लड़के की पीठ थपथपाकर उसके हाथों में बाँसुरी थमा देता और वह लड़का विजय की मुसकान से अपने दूसरे साथियों की ओर देखता हुआ अपने घर की ओर पगडंडी पार करता हुआ भाग जाता, जिससे अपने घर वालों को वह बाँसुरी दिखा सके। उसके जाने के बाद ही लड़कों की टोली में फिर खलबली सी मचने लगती और प्रत्येक बालक उससे अपनी बाँसुरी बनाने के लिए कहता। वे आपस में झगड़ते और कभी-कभी हाथापाई की नौबत भी आ जाती, लेकिन हुकम उनको अलग करता और सबके लिए बाँसुरी बनाने का ढाँढस देता। हुकम स्वयं भी बाँसुरी बहुत अच्छी बजाता था, बचपन से ही उसे इसका शौक़ था और जब वह बहुत छोटा था तभी उसने पड़ोस के एक व्यक्ति से कुछ राग सीखे थे।

झुग्गी के अन्दर से कौशल्या के चीख़ने की आवाज़ें फिर बाहर गूँजने लगी थीं।

हुकम चाकू की नोक से धीरे-धीरे बाँस में छेद बना रहा था, लेकिन उसके कानों में बड़ी चीख़ें थीं, दर्द की चीख़ें जो एक बार पहले भी दीनू के जन्म से पहले उसने सुनी थी, लेकिन तब और अब में बहुत अन्तर हो गया है...पहले वह एक सरकारी अस्पताल में दाख़िल करवा दी गयी थी और वह एक ऐसे ही दिन अस्पताल के दरवाज़े के बाहर खड़ा किसी शिशु के रोने की आवाज़ सुनने की बेचैनी को अपने हृदय में दबाये था और फिर दाई के बधाई देने पर वह बड़ी मुश्किल से दीनू को देखने की इच्छा को रोक सका था। दीनू का गोरा चेहरा, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें जैसी कौशल्या

की हैं, उसके पतले-पतले लाल होठ और सफेद हाथ-पांव—सब-कुछ उसे चित्र की भांति प्रतीत हुआ था। और अब वही दीनू झुग्गी के बाहर धूल में लोटा करता है, जब वह सो जाता है तो उसकी गंदी आंखो और नाक पर मक्खियां भिनभिनाने लगती हैं, गर्मियो में वह एक मैली बनियान पहनकर कभी ऊपर की सड़क के फुटपाथ पर और कभी सामने के टीले पर पत्थरों से खेलता है, बस्ती के दूसरे लडकों के साथ झगडे करता है...।

लेकिन कौशल्या की ये चीखें...आखिर इनकी अब क्या जरूरत पड़ गयी थी, क्या उसकी चीखों के बिना ही मैं कभी उसका दर्द नही समझ सका हूँ? बेकार रहने पर मां जो अपना गुस्सा उस पर निकालती है और खाते समय बाबू जो घूर-घूर कर मेरी थाली की ओर देखता है, मेरी रोटियों को गिनता है—उससे कौशल्या के दिल में जो दर्द उठता है उसे मैंने बहुत बार महसूस किया है...लेकिन महसूस करने की यह शक्ति भी अब कम होती जा रही है, उसे दूर करने का तो आखिर कोई रास्ता नही है। वे जवानी के बनाये सब सपने क्या हुए? क्या उनमे से कभी एक भी सच बन कर मेरी जिन्दगी मे नही आयेगा?

मशीन की तरह बांसुरी के सीने पर कब उसने छ छेद कर दिये, इसका हुकम को पता नही चला और जब चाकू की नोक मे वह एक और छेद करने के लिए झुका तो नेमी चिल्ला पड़ा, "यह सातवां छेद क्यो कर रहे हो, हुकम भाई? छ. तो हो चुके।" हुकम ने नेमी की ओर देखा और फिर बांसुरी को बिना बजाये, बिना उसकी परीक्षा लिये उसने बांसुरी को नेमी के हाथों में थमा दिया। और बांसुरी बनाने की उसकी तबीयत नही की और दूसरे लडको से कल फिर बांसुरी बनाने का वायदा करके उसने उन्हें विदा किया। जिन लड़कों की बांसुरियां नही बन सकी थी उनके पीले चेहरे उदास हो गये, परन्तु वे जानते थे कि एक बार मना कर देने पर हुकम कभी बांसुरी नही बनाता। वे सब चले गये, जिनकी बांसुरियां बन गयी थी वे बजाने लगे।

कौशल्या की चीखें और तेज़ होने लगी थी। वह दर्द से अपने हाथ-पैर पटक रही होगी, उसने अपने दांत भीच लिये होंगे, उसके होठ नीले पड़ गये होंगे और उसका फूला पेट... ..गर्भवती स्त्री कितनी भद्दी और

अश्लील लगती है ! जब कभी पिछले दिनों वह कौशल्या को पानी भरने जाते देखता या नल पर गीली साड़ी में लिपटे उसके बेडौल शरीर को देखता तो घृणा से उसका मुँह सिकुड़ जाता था, उसे अपने पर शरम आने लगती थी और अपने पतन पर उसे अपने से ही घृणा होने लगती थी। जिस कौशल्या के शरीर को एक दिन उसने इतना प्यार किया था कि उसे अपनी आँखों से ओझल होते देखकर उसे दुख होता था, जिसके चेहरे को अपने हाथों में लेकर उसे छोड़ने की उसकी तबीयत नहीं करती थी... और वही शरीर अब नाली की बदबू बन गया है जिसके साथ रात-दिन रहने की विवशता है, कर्तव्य है और फिर उसका परिणाम महीनों के बाद...छिः ! हुकम ने खाँसकर थूक दिया...कौशल्या पर उसे दया नहीं आ रही थी, उसकी दशा के साथ उसे सहानुभूति नहीं हो रही थी, अपने किये पर पछतावा या ग्लानि नहीं हो रही थी...बस एक घृणा, एक गहरी नफ़रत से उसका दिल भरता जा रहा था और जिस दिन यह पूरा भर जायेगा, तब क्या होगा ? वह आगे नहीं सोच सका।

हुकम उठ खड़ा हुआ, उसने चारों ओर एक नज़र दौड़ायी। सूरज तालाब के किनारे लगे पेड़ों और चट्टानों के पीछे छिप रहा था और क्षितिज पर जमा हुए बादल तरह-तरह के रंगों से चमक रहे थे। ठीक उसके सिर के ऊपर सफ़ेद बादल का एक बड़ा-सा टुकड़ा नीला, हरा और लाल बन गया था...तभी अपने पास किसी को खड़े देखकर उसने नज़र उठायी तो दीनू आँखों को हाथों से मलता हुआ उसके पास खड़ा था। हुकम कुछ क्षणों तक उसकी ओर चुपचाप देखता रहा...दीनू के हाथ और पैर धूल में सने हुए थे, कान पक गया था और उसमें पीप पड़ गयी थी, जिससे वह रात-भर चिल्लाता रहता था, उसका पेट बाहर को निकला हुआ था कौशल्या की ही भाँति...।

"बाबू...!" दीनू ने थोड़ी देर बाद हुकम को कुछ न कहते देखकर स्वयं ही बोलने का साहस किया।

परन्तु हुकम उसकी ओर नहीं देख रहा था, उसके कानों पर यह 'बाबू' शब्द नहीं पहुँचा था। उसकी नौकरी लगी होती तब उसके हाथ में कुछ रुपये होते और वह शामनगर से किसी दाई को बुलवा लेता, दाई के

आने से कौशल्या को कुछ तो तसल्ली होती। पिछले दिनों रोज़ ही कौशल्या उससे कहती थी कि वह किसी दाई का प्रबन्ध अभी से कर ले, लेकिन हर बार वह उसकी बात को टाल देता था, और उसकी उदासीनता से वह रोने लगती थी और फिर हुकम उठकर कहीं चल देता था, तालाब के किनारे या फिर सड़क पार करके आनन्द पर्वत की तरफ, जहां से उसे सारा करोलबाग़ दिखायी देता था—राजेन्द्रनगर में ईंटों के मकानों के ऊपर पड़ी हुई मैली छतों की अनगिनत क़तारें जिनका कोई अन्त नहीं होता था, अजमलख़ां पार्क का लम्बा-चौड़ा मैदान, उसके पीछे बिड़ला मन्दिर के लाल पत्थरों के कलश और दूर धुन्ध में फीकी पड़ी जामा मसजिद की गुम्बदें...वहां से शहर को नगा देख सकता था जैसे नंगी स्त्री के शरीर का अंग-अंग उभर कर सामने आ जाता है...और नंगी कौशल्या का फूला हुआ पेट...स्त्री की कुरूपता की इन्तहा! और अब उसकी चीखें...जिनमें दर्द नहीं, जिनमें बदला लेने की भावना नहीं, जिनमें विद्रोह की लपटें नहीं, केवल मशीन की तरह की खटाखट, या रेल के पहियों की एक जैसी आवाज़, या इंजन की लगातार बजने वाली सीटियां...जैसे सरसों का तेल निकालने की मशीन की चिमनी में से लगातार टिक-टिक के साथ धुआं निकलता है, लेकिन यह धुआं जैसे ठंडे कोयलों का धुआं हो जिनकी लपटों में हाथ डालने से हाथ नहीं जलते। "बाबू, मां क्यों चिल्ला रही है? गुल्लू कहता था कि वह मर जायेगी, जैसे उसकी मां इसी तरह मर गयी थी. बाबू.. क्या वह मर जायेगी?" दीनू ने फिर कहा। उसकी सिसकियां बन्द हो गयी थी।

हुकम के कानों में दीनू की बात पहुँची, लेकिन उसने उसका कोई जवाब नहीं दिया। शायद कौशल्या प्रसव-काल में ही मर जाये, फिर दीनू का यह आखिरी सहारा भी टूट जायेगा। अब कभी-कभी किसी लड़के के पीट देने पर, कभी कान में ज़ोर का दर्द होने पर, या भूख लगने से वह कौशल्या की गोद में अपना मुंह तो छिपा लेता है चाहे कौशल्या अपना गुस्सा उतारने के लिए उसे फटकार ही देती होगी या पीटती भी होगी, लेकिन फिर भी वह उसकी मां थी। उसके पैदा होने के बाद कभी-कभी वे दोनों उसके भविष्य के विषय में बातें किया करते थे। कौशल्या चाहती थी कि वह बड़ा होकर कोई दुकान कर ले, दुकान में आमदनी [illegible]

है और अगर क़िस्मत अच्छी हो तो हज़ारों के वारे-न्यारे हो सकते हैं, और वह कहता था कि दीनू को पढ़ा-लिखा कर उसे किसी दफ़तर या वैंक में क्लर्क वनना चाहिए, वहाँ मेज़-कुर्सी पर वैठकर इज्ज़त भी होती है और महीने वाद वँधी तनख़्वाह हाथ में आ जाती है, और फिर दीनू की शादी की वात; दोनों ही उसकी शादी जल्दी करने के पक्ष में थे जिससे वहू के आने पर घर में चहल-पहल हो जाये और उसके लाल मेंहदी-भरे हाथ और पैरों में झाँझरों के वजने से घर में सदा ही रौनक़ लगी रहे—लेकिन यह सव आज किसलिए वह फिर से सोच रहा है, उसे अपने इन विचारों पर ही घृणा होने लगी। ज़िंदगी जिस मोड़ पर आकर यकायक एक नये रास्ते पर वहने लगी थी उसमें इन सवके लिए स्थान नहीं है, आज जो है उसे स्वीकार करके वह ऐसी वातें नहीं सोच सकता।

वावू अपनी दुकान पर वैठे ग्राहकों का इन्तज़ार कर रहे होंगे, शायद इक्का-दुक्का जाड़े के लिए किसी गरम कोट की ट्राई कर रहा होगा, लेकिन वह शायद ख़रीदेगा नहीं, सात-आठ रुपये का कोट ख़रीदना कोई आसान वात नहीं हैं...माँ शायद ज़ोर-ज़ोर से राम का नाम ले रही होगी, लेकिन मन में उन्हें कौशल्या पर ग़ुस्सा आ रहा होगा कि अव एक नया प्राणी घर की सीमित पूंजी में हिस्सा वाँटने लगेगा, वच्चे की देखभाल करने के कारण कौशल्या ज़्यादा काम नहीं कर सकेगी...लेकिन उन्होंने भी तो हम छः जनों को पैदा किया था, दो मर गये। अच्छा ही हुआ, नहीं तो अभी दो और होते...काश, उनमें से एक के वदले वह मर जाता!

रात को माँ वावू से कहेगी कि उनके पोता हुआ है...नहीं, शायद पोती। नहीं, लड़की वेचारी को ज़्यादा दुख उठाने पड़ते हैं, वेचारी लाली... हम तो कभी-कभी सिनेमा भी देख लेते हैं, वाहर जाकर एक प्याला चाय भी पी सकते हैं; लेकिन वह सारा दिन घर में वैठी रहती है, कभी वुनती है, कभी काढ़ती है और कभी वर्तन माँजती है। मेरे पास पैसे होते तो मैं लाली के लिए एक सूट वनवा देता, नये सूट में उसका चेहरा खिल उठता, वह वदसूरत नहीं है, उसका रंग हम सव से ज़्यादा गोरा है, वह कौशल्या जैसी मोटी नहीं है। हमारी झुग्गी के सामने सड़क के पार 22 नम्वर की कोठी में जो लड़की रहती है और रोज सवेरे साढ़े आठ वजे किताबें हाथ

में दबाये स्कूल या कॉलेज पढ़ने जाती है, लाली उससे ज्यादा खूबसूरत है। उसे साड़ी पहननी चाहिए, साड़ी में वह ज्यादा अच्छी लगेगी...अब शायद कौशल्या को चीखते देखकर वह रो रही होगी। सोचती होगी कि शादी के बाद इसी तरह एक दिन वह भी चीखेगी, हाथ-पैर पटकेगी जैसे सब औरतें चीखती हैं, मानो इसी दिन के लिए वे चुप रहती है और बस एक दिन गला फाड़ कर सारे दिनों की कसर निकाल लेती हैं. ।

अचानक उसने महसूस किया कि कौशल्या की आँखें बन्द हो गयी हैं, शाम का सन्नाटा फिर अपनी तनहाई में खो गया है, दीनू भी हुकम को चुपचाप देखकर चला गया था, शायद किसी और से पूछने कि कौशल्या मरेगी तो नहीं ? हू...फिर उसने झुग्गी में जाने की ठानी, उसे कौशल्या के विषय में पूछना चाहिए, आखिर वह उसकी पत्नी है और वह उसका पति है, उसके दुख-सुख की जिम्मेदारी भी उस पर है और आज उसकी चीखों का कारण भी तो वही है...दीनू के जन्म से पूर्व कौशल्या को तड़पते देख कर मन-ही-मन उसने क़सम खायी थी कि वह अब दूसरा बच्चा पैदा नही करेगा, लेकिन कौशल्या का बेडौल शरीर...आखिर वह भी तो एक स्त्री का शरीर है और उसका उपयोग करना मर्द का अधिकार है...।

वह धीरे-धीरे झुग्गी की ओर बढ़ने लगा। झुग्गी के दरवाज़े पर एक पुराना बोरी का टुकड़ा परदे का काम दे रहा था, झुग्गी के ऊपर पड़े टीन के टुकड़े बहुत अव्यवस्थित रूप में एक-दूसरे से लिपटे छत का काम दे रहे थे। उसकी दहलीज पर लाली चुपचाप घुटनों पर ठुड्डी टेके बैठी थी, उसकी गोद में बुनने की सलाइयाँ बाहर की ओर निकली थी। उसने हुकम को आते नहीं देखा। हुकम ने झुग्गी के अन्दर सन्नाटा पाया, न कौशल्या की आवाज़ आ रही थी और न ही किसी नये शिशु के रोने की आवाज़ें। अन्दर सन्नाटा था। कहीं कौशल्या मर तो नहीं गयी? उसे पता था कि प्रसव-काल स्त्रियों को मृत्यु के घर तक ले जाता है, परन्तु उनकी जीने की उत्कट अभिलाषा उन्हें वहाँ से फिर दुनिया में घसीट लाती है. लेकिन कुछ द्वार पर ही अपनी आख़िरी साँसें लेती हैं...लेकिन कौशल्या उनमें नहीं है। वह इस ज़िंदगी में भी जीना चाहती अब भी वह अपनी आँखों में काजल लगाती है, बालों में ढेर-सा

चुटिया बनाती है, तीज पर हाथों में मेंहदी चढ़ाती है जैसे उसकी शादी की पहली तीज हो। जब किसी के घर में शादी, मुंडन आदि हो तो वह आधी-आधी रात तक ढोलक पर टप्पे गाती है...वह मरना नहीं चाहती, अपने इस बेढँगे शरीर को अब भी वह सजा-बना कर उससे प्यार करना चाहती है।

तभी सुभागी अन्दर से निकली, हुकम को देख कर उसने अपनी ओढ़नी से आँखें पोंछी। हुकम घबरा गया और खुली शून्य आँखों से सुभागी की ओर देखता रहा। उसने पूछा कुछ नहीं। लाली दहलीज़ पार करके खड़ी हो गयी थी और सुभागी की ओर और कभी हुकम की ओर देख रही थी।

"बेचारी ने इतना दुख सहा, लेकिन फिर भी मरी हुई लड़की निकली...," उसने फिर अपने आँसू पोंछे—"सब भगवान की माया है। इनसान को अपने पुराने पाप भुगतने ही पड़ते हैं, जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है।"

हुकम ने पास आकर पूछा, "और कौशल्या कैसी है?"

"वह ठीक है, कमज़ोरी से उसकी आवाज़ नहीं निकल रही है। मैंने उसे नहीं बतलाया, नहीं तो बेचारी को दुख होता। तू अपने बाप को तो बुला ला, हुकम। इसे दबाने का इंतज़ाम करना होगा।"

हुकम थोड़ी देर तक मूर्तिवत् खड़ा रहा। झुग्गी के अन्दर जाने की उसकी तबीयत नहीं की। वह फटी-फटी आँखों से झुग्गी के दरवाज़े पर लटकते हुए बोरी के परदे की ओर देखता रहा।

देबू ने करवट बदल कर आँख खोली तो पेड़ों और झाड़ियों के झुंडों के पीछे आसमान के कोने से रोशनी आते देखी, मानो दूर कहीं आग लग गयी हो जिसकी परछाईं से अंधकार में डूबा आसमान चमकने लगा हो। सिर के ऊपर कुछ धुंधले तारे अब भी टिमटिमा रहे थे, मानो अपनी रोशनी छीने जाने का विरोध कर रहे हों। वह उठ कर अपनी चारपाई पर बैठ

गया। इतनी सुबह वह कभी नही उठा था और नये दिवस का जन्म होने में आसमान दर्द से कितना चीखता है और उसका कालापन किस तरह एक उजलेपन में परिवर्तित हो जाता है, इसे देखने का अवसर उसे कम ही मिला था। बस्ती मे दूर-दूर तक कही कोई आवाज़ नही आ रही थी, सब इस नये दिन के आगमन से अनभिज्ञ थे, शायद वे दिन का महत्व कभी नही समझ सकते और वे अपनी जिंदगी के इस स्तर की भाँति इस दिन को भी दुनिया के पहाड़ों और तराइयों, रेगिस्तानो और समुद्र के असीमित फैलाव, अँधेरे और उजाले, महल और झोपड़ियों की वास्तविकता की भाँति स्वीकार कर लेते हैं, कभी रात को बढ़ा देने या सूरज को छिपने न देने का ख़याल उनके मन मे नही आया ..।

अचानक ही देवू ने महसूस किया कि आज का दिन उसकी ज़िदगी में बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसकी अभी तक उसने कोरी कल्पना ही की थी और कभी-कभी रात को चारपाई पर सीधे पैर फैला कर लेटे-लेटे आसमान को देखते समय इसका ख़याल उसके मन मे आया करता था। आज दिन में रलियाराम अपनी बेटी का शगुन चढाने आयेंगे। उनकी बेटी लिट्टो की उसके साथ सगाई हो जायेगी। लिट्टो को उसने देखा है, वह अकसर काले रंग की सलवार पहना करती है, परन्तु लाल दुपट्टे मे लिपटे शरीर को उसने कभी ध्यान से नही देखा। एक दिन उसकी आँखो मे काजल लगा हुआ देखा था। वह शायद दो-तीन बार अपनी माँ के साथ उसके घर भी आयी थी, वह बीडनपुरा मे रहती है, लेकिन गली का नम्बर उसे याद नही। वे लोग पहले भी उनके साथ रहते थे, मुझे मालूम नहीं लेकिन माँ यही कहती थी। रलियाराम कभी-कभी बाबू के पास आकर बैठ जाते हैं। बाबू उनकी इज्जत करते है और पुराने दिनों का खयाल भी। उसने कभी नहीं सोचा था कि लिट्टो के साथ एक दिन उसकी सगाई हो जायेगी, शायद वह उसके लायक नही है, और शायद कोई भी लडका उससे ब्याह करके अपने को भाग्यवान समझता। मैं .मैं उसे खुश रखने की कोशिश करूँगा। जब कभी दुकान पर बचनसिंह नही होगा तो मैं ज़रा और पैसे अपने पास रख लिया करूँगा, मु ` थोड़े-से पैसे जमा कर लेने चाहिए जिससे मैं उसके लिए कुछ ख़रीद सकूं।

एक बार उसने फिर आकाश की ओर ताका, बड़ी तेज़ी के साथ उजाला ऊपर को फैलता जा रहा था और रात को जिन बादलों के टुकड़ों ने तारों को ढँक लिया था, वे सूरज की धुँधली रोशनी में लाल, नीले, पीले रंगों में चमकने लगे थे। सगाई तो आज हो जायेगी लेकिन शादी नवम्बर से पहले नहीं हो सकती, क्योंकि उससे पहले का कोई मुहूर्त नहीं है, हूँ...ये पंडित कभी शादी के महत्व को नहीं समझ सकते, ये रोज़ ही शादियाँ करवाते हैं, लेकिन उसकी शादी तो एक ही बार होगी, इन पाँच महीनों का इंतज़ार वह कैसे सह सकेगा? ज़िंदगी के ये 23 साल कब और कैसे गुज़र गये, इसका उसे कभी पता नहीं चला...लिट्टो जब हँसती है तो उसके दाँत मोतियों जैसे चमकने लगते हैं, वह न जाने मेरे साथ अपनी सगाई की बात सुनकर खुश हुई होगी। उसने मुझे देखा है, वह शायद मेरा नाम भी जानती है। वह न जाने हमेशा काली कमीज़ क्यों पहने रहती है? शायद काली कमीज़ में उसका रंग और भी निखर जाता है। सारी बस्ती में लिट्टो जैसी खूबसूरत लड़की नहीं है। तालाब के किनारे जो कुछ रोड़ी कूटने वाले लोग रहते हैं उनकी कुछ लड़कियाँ ज़रूर आकर्षक हैं, लेकिन वे आख़िर गाँवों की देहातिन औरतें ठहरीं जो घाघरे और चोलियाँ पहनती हैं, जो ...न। किसी शरम के खुले में अपनी चोली ऊपर उठा कर अपने बच्चों को दूध पिलाने लगती हैं। लिट्टो का उनके साथ भला कैसे मुक़ाबला किया जा सकता है...!

कल रात को उसने माँ और बाबू को बड़े एकाग्रचित्त होकर बातें करते सुना था। वे रलियाराम की बातें कर रहे थे, क्योंकि शायद दिन में शादी के प्रस्ताव को लेकर उनके पास आये थे, तभी माँ ने उसे बताया था कि कल उसका शगुन किया जायेगा और वह कुछ क्षणों तक भौंचक्का-सा खड़ा रहा था। बाबू ने कुछ विशेष उत्साह नहीं दिखलाया था, वह चुपचाप सुभागी की बातें सुनते रहे थे, लेकिन माँ दौड़कर सारी बस्ती में देवू की सगाई की खबर फैला आयी थी और कुछ को आज शाम को घर आने का निमंत्रण भी दे आयी थी। रलियाराम उनकी अपेक्षा काफ़ी बड़े आदमी थे, अजमलख़ाँ रोड पर उनकी कपड़े की दुकान थी और आमदनी भी अच्छी हो जाती थी, देवू उन्हें पसन्द आ गया था, नहीं तो जिसके सामने

पाँच सौ की थैली रखते वही हाथ बढ़ाकर लिट्टो का हाथ पकड़ लेता। देवू पर उन्हें विश्वास था।

दिन में हुकम को झुग्गी के बाहर एक बडी-सी चट्टान पर पत्थर उछालते देखकर देवू उसके पास जाकर बैठ गया। अंदर-ही-अंदर देवू के मन मे हुकम के प्रति दया और सहानुभूति थी। पहले जब हुकम बस में कंडक्टर था और सौ रुपये कमाता था तो उसे उससे ईर्ष्या होती थी, लेकिन आज उसे चुपचाप चट्टान पर बैठे देखकर उसे उसके पास जाये बिना नही रहा गया।

"बचनसिंह कहता था, हुकम, कि तुम्हे काम दिलाने वाले दफतर में अपना नाम दर्ज करा देना चाहिए, वहाँ से जल्दी नौकरी मिल जाती है, और फिर तुम तो दसवी पास हो, तुम्हें दूसरों से पहले...।"

हुकम को यह चर्चा पसन्द नही आयी। उसने बिना देवू की ओर देखे कहा, "आज तेरी सगाई हो रही है, देवू...।"

अपने बड़े भाई के मुख से अपनी सगाई की बात सुनकर देवू को शरम आने लगी। वह चुपचाप बैठा चट्टान के नीचे टूटे हुए पीले पत्थरो की ओर देखता रहा।

जग्गी ऊपर की पगडडी से सडक पर जा रहा था, हुकम और देवू को वहाँ बैठे देखकर वह भी उनके पास आ गया—"बड़ा किस्मत वाला है तू देवू, सबसे नम्बर मार गया, रलियाराम को तुझसे अच्छा लड़का नही मिला...!" यह कहकर उसने ठहाका लगाया—"आज, देवू, तेरी सगाई होगी, तेरी माँ बस्ती के सब लोगो से कहती फिर रही है. ।"

देवू सोच रहा था कि उसका बस चलता तो वह सारे शहर मे ढोलक पीट-पीट कर सबको यह समाचार सुनाता। वह चाहता था कि वह जग्गी के साथ और अपने दूसरे दोस्तो के साथ अपनी सगाई की चर्चा करे, लेकिन शरम से उसके गाल कनपटियों तक लाल हो गये थे।

हुकम ने जग्गी की ओर देखते हुए कहा, "तेरा नम्बर कब आयेगा, जग्गी?"

जग्गी मुसकराता हुआ बोला, "मैं इस शादी-वादी के चक्कर पड़ता। बिना शादी के ही मेरा काम चल जाता है।"

हुकम भी हँसने लगा। और देवू को वह दिन याद आया जब उसने जग्गी को नशे में बहकते हुए सुना था। वह किसी औरत के बारे में बातें कर रहा था। लेकिन वह बुरा है, कोई भला आदमी इस तरह के काम नहीं करता। सब शादी करवाते हैं, किसी की स्त्री सुन्दर और गोरी होती है और किसी की भद्दी और काली। लिट्टो का रंग साफ़ है, मेरी क़िस्मत अच्छी है जो लिट्टो जैसी पत्नी मुझे मिल रही है...।

थोड़ी देर बाद हुकम बोला, "न जाने कोई कह रहा था कि बम्बई में जहाज़ों में माल उतारने और चढ़ाने का काम बहुत आसानी से मिल जाता है, लेकिन बम्बई का किराया 23 रुपये है...वह कहाँ से आयेगा ?"

"एक बार एक अख़बार में मैंने समुद्र की फ़ोटो देखी थी," देवू ने कहा, "समुद्र में बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठा करती हैं जिनमें कभी-कभी बड़े जहाज़ भी डूब जाते हैं।"

"काश कि मैं बम्बई जा सकता...!" हुकम ने हथेली को गाल पर रख लिया और सामने झुग्गी की ओर देखता हुआ बोला, "मैं यहाँ से ऊब गया हूँ...यहाँ शायद मुझे कोई काम भी नहीं मिल सकता...और माँ हमेशा मुँह बनाये रहती है, उसे मेरी रोटियाँ अखरती हैं।"

"क्या कह रहा है, हुकम ?" देवू ने चिल्लाकर कहा, "माँ ऐसी नहीं है...बस उसका ग़ुस्सा तेज़ है, मन में वह शायद तुझे सबसे ज़्यादा प्यार करती है।"

"हूँ...!" हुकम थोड़ा-सा हँसा, "प्यार करती है! देवू, तू अभी बच्चा है, जब तेरी शादी हो जायेगी तो देखना...अभी तो माँ तेरे ससुराल से माल आने के सपने देख रही है और फिर बाद में तुझे और लिट्टो को...।"

"हुकम...!" देवू चीख़ उठा, "क्या हो गया है तुझे, हुकम...कम-से-कम आज के दिन ऐसी बातें मत कह।"

इस बार जग्गी ने ठहाका लगाया, "देवू को डर लग रहा है, क्योंकि आज उसकी सगाई है। हूँ...!"

हुकम भी हँसने लगा, परन्तु उसने कुछ कहा नहीं।

देवू बिना कुछ कहे तेज़ी से ऊपर की ओर चल दिया। अब भी उसके

कानों में जग्गी और हुकम की हँसी के ठहाके गूँज रहे थे...वह दोनों की बातों को अनसुनी कर देना चाहता था, लेकिन वे मानो उसका साथ छोड़ने के लिये तैयार नही थी।

सूरज चमकने लगा था और पक्की सडक पर लोगों की चहल-पहल जारी हो गयी थी। देवू देवनगर की ओर चला गया। धीरजसिह की दुकान पर बैठकर एक प्याला चाय और एक सिगरेट पीकर वह हलका महसूस करना चाहता था, और फिर उसका सगाई का दिन था, उसके कानों में ढोलक की धप-धप गूँज रही थी जो उसकी सांस के साथ सुर मिला उमे बजती सुनायी दे रही थी।

धीरजसिह की दुकान पर कुछ लोग बैठे हुए थे, देवू भी एक कोने मे जाकर बैठ गया...आज चाय का प्याला पीने मे जो मजा आयेगा वह शायद पहले कभी नही आया होगा। माँ कहती थी कि इन जाडो मे वह ब्याह भी कर देगी...ठीक तो है।

"अरे देवू, क्या सोच रहा है ? चाय पियेगा ?" धीरजसिह ने अँगीठी के पास बैठे-बैठे ही दूर से पूछा।

"हाँ, एक प्याला चाय ले आ, लेकिन गरम हो.. ," देवू ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

गहरे हरे रग की पगडी पहने अपनी सफेद दाढी हिलाते हुए एक सरदारजी ने कहा, "सुना है कि जवाहर बस्ती की सडक पर जो दुकानें बनी हुई है उन्हें सरकार उठाने जा रही है। वहाँ सरकार जमीनें बेच रही है।"

पंडितजी ने सरदार की ओर मुख फेर कर कहा, "अजी, यह सरकार जो करे सो थोड़ा है।"

सरदारजी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, "मेरे दामाद की वहाँ दुकान है, वेचारा न जाने अब कहाँ जायेगा ?" यह कहकर उन्होने एक लम्बी साँस ली।

धीरजसिह ने चाय का प्याला देवू के सामने रख दिया, "कुछ खायेगा ?"

"नही...खास भूख नही है।"

धीरजसिंह को फिर अपने पास से जाते देखकर देवू ने पुकारा, "धीरजसिंह, ज़रा सुन तो...!"

धीरजसिंह मुसकराता हुआ उसके पास आकर खड़ा हो गया—"ओहो ...आज तो बड़ी सिगरेट पी रहा है। क्या बचनसिंह की दुकान पर कोई बड़ा हाथ मारा है?"

देवू ने हँसकर कहा, "यहाँ बैठ जा...।"

धीरजसिंह बेंच पर उसके पास आकर बैठ गया।

"सुन धीरजसिंह...आज...आज मेरी सगाई हो रही है।"

"झूठा...!" कहकर धीरजसिंह ने ध्यान से देवू की आँखों की ओर देखा, "तू रोज़ ही अपनी सगाई के ख़्वाब देखता है, तुझे कौन...?"

"चुप भी रहेगा। तू रलियाराम को जानता है न...?"

"वही रलियाराम न, जिसकी अजमलख़ाँ रोड में दुकान है?"

"हाँ, वही। उसकी लड़की लिट्टो के साथ...।"

"सच...!" कहकर धीरजसिंह ने देवू को अपने पास और घसीट लिया।

"बड़ा क़िस्मत वाला है तू, देवू...तो इस खुशी में यह चाय की दावत मेरी तरफ़ से रही। ले, केक भी खा।" यह कहकर धीरजसिंह प्लेट में कल के पुराने दो केक के टुकड़े प्लेट में रखकर ले आया। "तो तेरी सगाई हो रही है लिट्टो के साथ, शादी कब होगी?"

"माँ इन जाड़ों में कहती थी...।"

"और तू तो चाहता होगा कि आज हो जाये!" यह कहकर फिर धीरजसिंह ने देवू को अपनी ओर घसीट लिया।

किसी ने एक प्याला चाय का माँगा, तो धीरजसिंह उसके लिए चाय बनाने चल दिया। देवू चुपचाप बैठा सड़क पर गुज़रते लोगों को देखने लगा। आज का दिन उसे अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक भिन्न-सा प्रतीत हो रहा था। उसे किसी दूसरी नौकरी की तलाश करनी चाहिए... लिट्टो उस झुग्गी में नहीं रह सकेगी। लेकिन लिट्टो अच्छे घर की खाती-पीती लड़की है, रलियाराम ने उसे छठी पास करवा दिया है, उससे इस वातावरण में नहीं रहा जायेगा...लेकिन ब्याह को नहीं टाला जा सकता।

ब्याह के बाद जब कहीं अच्छी नौकरी मिल जायेगी तो लिट्टो को साथ लेकर कहीं चला जाऊँगा।

तभी मुक्खासिंह को बिना पगड़ी बाँधे उसने दुकान के पीछे से आते देखा, वह एक लम्बा-सा कुर्ता और लुंगी पहने था। आते ही उसने अपनी कर्कश आवाज़ में धीरजसिंह से पूछा, "कल रात को कितने बजे दुकान बंद की थी?"

"शायद दस बजे होंगे...।"

"हरामखोर, झूठ बोलता है।" यह कहकर उसने दो घूंसे बिना सोचे-समझे धीरजसिंह की पीठ पर जमा दिये, "मैं नौ बजे यहाँ आया तो तू दुकान बंद कर चुका था। तुझे मुफ्त की रोटियाँ देता हूँ, साले! तुझे काम न करना हो तो निकल जा यहाँ से . !" दुकान पर बैठे ग्राहक कभी मुक्खासिंह की ओर और कभी हाथ से पीठ सहलाते हुए धीरजसिंह की ओर देख रहे थे। उनकी ओर देखते हुए मुक्खासिंह ने कहा, "भाई होने का फायदा उठाना चाहता है...मैं ऐसा लिहाज़ नहीं करता...काम ठीक से नहीं करना हो तो साफ़-साफ बता दे, मैं किसी दूसरे का इन्तज़ाम कर लूँगा ।"

घूंसों का तो जो दर्द धीरजसिंह को हुआ सो हुआ, लेकिन इतने लोगों की भीड में अपने पीटे जाने की ग्लानि से उसकी गरदन जो एक बार नीचे झुकी, वह झुकी-की-झुकी ही रह गयी। मशीन की तरह वह प्यालों को धोता रहा।

"अजी सरदारजी, अभी बच्चा ही तो है, कहीं सिनेमा वगैरह देखने की तबीयत कर आयी होगी।" चाय पीते हुए एक ग्राहक ने मुक्खासिंह की ओर देखते हुए कहा।

धीरजसिंह ने अपनी गरदन ऊपर उठाकर चिल्लाकर कहा, "मैं सिनेमा नहीं गया था।" मुक्खासिंह दाँत पीसता हुआ बोला, "तो मैं झूठ बोल रहा हूँ...!"

थोडी देर बाद धीरजसिंह एक प्याला चाय का देवू के पास बैठे एक व्यक्ति के पास रख गया। देवू ने धीरजसिंह की आँखों की ओर देखा, परन्तु न उनमें आँसू थे और न ही दुख की कोई छाया। धीरजसिंह उसी प्रकार नज़रें झुकाये वापस लौट गया। देवू का [illegible] कि वह उसी वक्त

मुख्तारसिंह की दुकान से उठ जाये, उससे उसे घृणा-सी होने लगी थी। कितनी निर्दयता से वह धीरजसिंह को पीटता है, आज पहली बार उसने अपनी आँखों से धीरजसिंह को पिटते देखा था, यद्यपि पहले कितनी ही बार बातों-बातों में धीरजसिंह ने उसे बतलाया था...!

मुख्तारसिंह ने देबू को बैठे देखा तो उसकी ओर देखकर मुसकराया। वह नानकचन्द को जानता था। उसने चिल्लाकर देबू की ओर देखते हुए कहा, "अरे ठीक है देबू, बहुत दिनों बाद दिखायी पड़ा !"

देबू मुंह से कुछ नहीं बोला, केवल अपनी गरदन हिला दी, वह उसी प्रकार चाय के घूंट भरता रहा। अगर वह धीरजसिंह की जगह होता तो निश्चय ही कहीं चला जाता...चाहे भीख ही क्यों न माँगनी पड़ती।

थोड़ी देर तक मुख्तारसिंह कभी अपनी दाढ़ी के बालों को मरोड़ता और कभी मूंछों को तीखी बनाता और छाती बाहर को निकाले सड़क पर चलते लोगों को देख रहा था, कभी किसी स्त्री को देखकर वह मुसकराता और जब उसका जी न मानता तो जोर से कुछ-न-कुछ कह देता, या पंजाबी में किसी गीत की एक लाइन गा देता...थोड़ी देर बाद अपने किसी दोस्त के साथ चहलक़दमी करता हुआ वह चला गया। दुकान पर भी ग्राहक ज्यादा न थे। धीरजसिंह देबू का प्याला उठाने आया तो वह मुसकरा रहा था, उसके पीले दांत उसकी हलकी काली दाढ़ी और मूंछों के बीच चमक रहे थे। उसने देबू की ओर देखते हुए कहा, "कुछ और लेगा ?"

देबू ने भी मुसकराना चाहा, लेकिन धीरजसिंह की इस अजीब-सी कृत्रिम मुसकान को देखकर वह चुप ही रहा।

धीरजसिंह हँसते हुए देबू के पास बेंच पर बैठ गया, "तू देखना कि एक दिन मैं मुख्तारसिंह का खून कर डालूंगा, वह अपने-आपको समझता क्या है...जानवर कहीं का ! सारा दिन ठर्रे-पर-ठर्रा चढ़ाता रहता है और रात को न जाने क्या करता है, आधी-आधी रात तक कहाँ रहता है ? गुंडा...हाँ...देबू, वह एक गुंडे से कम नहीं।"

देबू चुपचाप सामने सड़क पर देखता हुआ धीरजसिंह की बातें सुनता रहा। धीरजसिंह के चेहरे की ओर देखने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "धीरजसिंह, तू यह काम छोड़ क्यों नहीं

देता ? कही और नौकरी कर ले।"

इस बार फिर धीरजसिह ने एक ठहाका लगाया और फिर देवू के कधे को पकडते हुए बोला, "देवू, तू नही जानता कि मुख्तारसिह ने हमारे बाप का रुपया हजम कर लिया है और मुझे एक कौडी भी नहीं दी। पूछने पर मुकर जाता है, लेकिन मैं ऐसे नही छोडने का, उस पर हम दोनों का बराबर-बराबर हक है। इस दुकान पर भी मेरा उतना ही हक है जितना मुख्तारसिह का...।"

धीरजसिह ने एक-आध बार पहले भी इस विषय मे देवू से चर्चा की थी और जब देवू उससे कहता कि एक दिन वह सारे मामले को मुख्तारसिह के साथ सुलझा क्यो नही लेता, तब हमेशा ही धीरजसिह जोश के साथ कहता था कि वह सबका बदला एक दिन .एक बार निकाल लेगा, और देवू हैरान होता था कि आखिर वह दिन कब आयेगा मुख्तारसिह के सामने धीरजसिह हमेशा ही भीगी बिल्ली-सा बना रहता था, कभी उसके सामने मुंह खोलने की हिम्मत उसे नही होती थी।

"नहीं तो मुख्तारसिह के पास शराब पीने के लिए पैसे कहां से आते हैं ? वह नये-नये कपड़े किस तरह बनाता है, दुकान मे तो चार-पांच रुपये रोज से ज्यादा आमदनी नही होती।" धीरजसिह मानो अपने-आपसे ही बातें कर रहा था।

देवू को धीरजसिह की बातों में विशेष दिलचस्पी नही थी।

"तू कुछ नही करेगा धीरजसिह, तुझमे हिम्मत ही नही है। क्या तो जल्दी फैसला कर ले, नही तो उसका काम छोडकर कही और काम कर ले।"

"लेकिन काम कहां मिलता है, देवू ? तुझे तो साइकिल बनाने का काम भी आता है, मैं तो सिर्फ चाय के प्याले बना सकता हूँ।" धीरजसिह ने धीमे स्वर में कहा।

"यहां से छोड दे तो कहीं-न-कहीं काम मिल ही जायेगा, आखिर इतनी बड़ी सारी दुनिया जिन्दा रहती है।"

दुकान पर दो युवक आकर बैठ गये तो धीरजसिह उठ खड़ा हुआ। देवू ने उसके मैले जांघिये और लम्बी-लम्बी टांगो मे उगे हुए काले बालो

को देखा जो काली घास की भाँति खड़े हुए थे।

सामने आनंद पर्वत पर टीन की छतें चमकने लगी थीं और सड़क की दुकानों, बिजली के खंभों के साये और भी गहरे हो गये थे। कुछ क्षणों के लिए देवू धीरजसिंह के विषय में ही सोचता रहा। वह कुछ नहीं करेगा, यह दुकान भी नहीं छोड़ेगा...उसमें हिम्मत ही नहीं है...।

शाम को शगुन आया, 25 नुगदी के लड्डू, रोली और चार रुपये—देवनगर में रहने वाली देवू के दूर के रिश्ते की बुआ और उसके बच्चे, रेगड़पुरा में रहने वाले उसके मामा और मामी, कौशल्या की एक दूर के रिश्ते की वहन और वस्ती की पड़ोस की कुछ औरतें और मर्द आये।

देवू शर्माता हुआ कभी माँ के कहने पर किसी वड़ी उम्र वाले के पाँव छूता और कभी हाथ जोड़कर प्रणाम करता। वस्ती में ही रहने वाले एक ब्राह्मण—जो 'पंडितजी' नाम से ही प्रसिद्ध थे—ने कुछ पूजा वग़ैरह की, देवू के रोली का टीका लगाया और कुछ संस्कृत के श्लोक पढ़े, जिन्हें कोई समझ नहीं सका। और फिर वस्ती की कुछ औरतें ढोलक लेकर गीत गाने वैठ गयीं। औरतें झुग्गी में वैठी रहीं और मर्द वाहर दरी पर वैठकर इधर-उधर की वातें करते रहे। नानकचन्द लोगों से कभी हुकम को कोई काम न मिलने की वात करते और कभी अपनी दुकान के न चलने का ज़िक्र करते। दूसरे लोग इसके प्रत्युत्तर में अपने परिवारों की मुसीवतें, महँगी जिंदगी और काम न मिलने की शिकायतें कर रहे थे। किसी की सगाई, शादी या मौत पर ही इकट्ठा होने का अवसर उन्हें मिलता था, अतः इनमें वे जी भरकर अपने मन में जमा हुए विचारों को प्रकट करते थे।

जव रात को दिन-भर की थकान के वाद देवू वाहर अपनी चारपाई पर आकर लेटा तव भी अन्दर झुग्गी में से ढोलक पर गानों की आवाज आ रही थी। उसकी वुआ की लड़की की आवाज अच्छी सुरीली है, लेकिन देखने में वह कितनी भद्दी लगती थी...इस प्रकार के गानों में उत्साह नहीं

होता था, जिस अवसर पर वे गाये जाते थे। उनमें इन सब औरतों की आवाजों मे अपना-अपना निजी दर्द और व्यथा झलकती थी। यह बात नही कि देवू की सगाई की खुशी में ये गाने गा रही हो, परन्तु उस प्रकार के मौको की तलाश मे वे सदा ही रहती थी। देवू ने अपने दोनों हाथ सिर के नीचे दबा लिये और ऊपर आसमान की ओर ताका, तारे छिटके हुए थे लेकिन चांद का कही पता नही था, उसका दिल शान्त था। सुबह की भांति तेजी से ऊपर-नीचे नही उठ रहा था। अपनी ज़िंदगी के पिछले 23 वर्ष अनायास ही उसकी आँखों के सामने घूम गये, अतीत के मीठे-कडवे-धुंधले चित्र...और आने वाले भविष्य की सुन्दर आकृतियां और उनके सफल होने की शंकाएँ...और आसमान के नीचे ऊबड़-खाबड झाड़ियाँ, लाल पत्थरों की चट्टानें, झुग्गियों की धुंधली अस्पष्ट रोशनियां और उन सबके पीछे ढोलक के साथ-साथ नारी-स्वरों की मिश्रित गूंज ..जिनकी दबी हुई मुर्दा इच्छाएँ और अधूरे स्वप्न इन गानों द्वारा आवाज पाते हैं...।

तभी दूर झाड़ियों मे से एक धुंधली-सी आकृति उसे अपनी चारपाई की ओर आती दिखायी दी. ."अरे भोला, तू दिन मे नही आया...," देवू ने कहा।

भोला थोड़ी देर तक उसकी चारपाई के पास चुपचाप खड़ा रहा, फिर थोडे से खाली स्थान पर बैठ गया, देवू ने अपने पाँव सिकोड लिये।

"तुझे पता है न भोला कि आज मेरा शगुन आया है ..!"

"हाँ, अभी-अभी पता चला, तो मैं यहाँ तुम्हे देखने आ गया। शादी कब होगी, देवू ?"

"शायद होली पर...।"

"हूं...देख, मैं तेरी शादी पर गाने गाऊँगा चाहे कोई लाख ही मुझे मना क्यो न करे...अब देवू, शायद तू नही जानता कि जब से मैंने यह खबर सुनी है तब से मेरा दिल ऐसा धकधक कर रहा है .।"

देवू हँसने लगा।

भोला को समझ नही आ रहा था कि किस प्रकार वह देवू को बताये कि उसकी सगाई की खबर सुनकर उसे कितनी प्रसन्नता हुई है! सारी बस्ती मे वह केवल देवू को ही अपना समझता है, यद्यपि देवू हमेशा अपना

वक़्त काटने के उद्देश्य से ही भोला से बातें किया करता था। हमेशा ही उसकी बातों का मज़ाक उसने उड़ाया था, लेकिन फिर भी भोला का अपने में विश्वास और निजीपन देखकर उसे भोला से बातें करने में एक अजीब-सा आनन्द आता था। जो बात वह किसी से नहीं कहता था, उसे भोला से कहकर अपना भार हलका करता था।

"तू जल्दी-जल्दी नये गाने सीख ले, भोला। मेरी शादी में रेकॉर्ड तो बजेंगे नहीं। बाबू कभी इतना ख़र्च करने पर राज़ी नहीं होंगे, इसलिए तू ही गाने गा देइयो...।"

भोला चुपचाप अँधेरे में छिपी चट्टानों और पगडंडियों को देख रहा था।

"तू जानता है भोला, मेरी बीवी बहुत ख़ूबसूरत है...," देबू ने धीमे स्वर में हिचकिचाते हुए भोला की ओर देखते हुए कहा, "वह 'रत्न' पास है, भोला। लेकिन मैं उसे खुश नहीं कर सकता, मैं बचनसिंह की दुकान पर साइकिलें बनाने का काम करता हूँ, अब किसी और नौकरी की तलाश करूँगा। फिर कहीं और चला जाऊँगा, इस झुग्गी में उससे नहीं रहा जायेगा...।"

भोला उसकी बातों को सुनता रहा, लेकिन उसके विचार बहुत दूर-दूर तक उड़ रहे थे।

दुकान बंद करने से पहले नानकचन्द ने दिन-भर की आमदनी पर एक नज़र डाली, केवल ढाई रुपये लकड़ी की मज़बूत सिंदूकड़ी में पड़े थे। छः आने की एक पुरानी जासूसी किताब एक लड़के ने मोल ली थी, एक रुपये की किसी क्लर्क ने गरम पतलून ख़रीदी थी, 12 आने का एक पुराना जूता बिक गया था, और भी छुटपुट का थोड़ा-सा सामान कुछ लोगों ने ख़रीदा था। उन्होंने दुकान के सामान पर एक नज़र डाली, लेकिन वह सब सामान दो-तीन साल पुराना था, कभी उन्होंने सामान बेचकर नयी चीज़ें नहीं ख़रीदीं। ग्राहक कहते थे कि वे सब-की-सब बड़ी पुरानी चीज़ें हैं, जामा

मसजिद के कबाड़ी हर 15वें दिन नयी-नयी चीज़ें अपनी दुकानों पर सजाते हैं। लेकिन वह क्या करें, जो मिलता है वह खर्च हो जाता है, घर में खाने वाले भी तो कम नहीं हैं और अब सुभागी देवू का ब्याह करके एक नया प्राणी घर में लाना चाहती है। इस प्रकार कब तक गुज़ारा चल सकता है? नानकचन्द की सफ़ेद घनी मूँछें क्रोध में हिलने लगीं और उनके हाथ दूकान का ताला बन्द करते समय काँपने लगे।

सड़क पर बिजलियाँ जल गयी थीं और दिन में कुछ वर्षा होने के कारण गीली पक्की सड़क मोटरों की रोशनियों में चमक रही थी। आसमान पर अब भी बादलों की घनी चादर छायी हुई थी, हवा तेज़ थी...और ठंडी भी...।

घर पहुँचे तो झुग्गी के अन्दर अभी तक लालटेन नहीं जली थी, पास के चूल्हे में कुछ लकड़ियों से जले हुए कोयले अँधेरे में चमक रहे थे। लाली बाहर खड़ी थी, नानकचन्द को आये देख अन्दर आकर उसने चुपचाप लालटेन जला दी। नानकचन्द चारपाई पर बैठ गये और लाली से पूछा, "तेरी माँ कहाँ गयी है, लाली? झुग्गी में अभी तक रोशनी तक नहीं की!"

"माँ कहीं पड़ोस में गयी है. .।"

"हूं...!" कहकर नानकचन्द अपने कपड़े बदलने लगे। सुभागी से कभी घर के अन्दर नहीं बैठा जाता, हमेशा पड़ोस में जाने को उसकी तबीयत करती है, दूसरे लोग भी क्या सोचते होंगे कि इसे अपने घर में जैसे कोई काम नहीं है। लेकिन ज़रा-सा कहो तो वह रोने लगती है, अपने दुखड़े सुनाने बैठ जाती है, खाना नहीं खाती। वहीं एक कोने में उन्होंने सुन्दर को कम्बल ओढ़े लेटे हुए देखा, उसके बाल बिखरे हुए थे और आँखें बन्द थीं, वह हाथ का पलटा लिये लेटा था।

"*सुन्दर को क्या हुआ?*"

"वह तो दिन में ही आ गया था, उसे सर्दी लग रही थी, शाम तक बुखार आ गया सो तब से लेटा है...," लाली ने ध्यान से नानकचन्द की ओर देखते हुए कहा।

"हमारे लड़के भी दूसरे लड़कों से बिलकुल अलग हैं। ज़रा-सा

किया कि बुखार आ गया, आगे जाकर ये क्या करेंगे? काम मिलता है तो करते नहीं और फिर खाली बैठे-बैठे कहते हैं कि अब कोई नौकरी नहीं मिलती...।"

लाली को सारे घर-भर में सबसे अधिक स्नेह सुन्दर से था। सुन्दर ने कभी अपने विषय में किसी से कुछ नहीं कहा। जब बुख़ार आ जाता था, तो वह आँखें बन्द करके लेटा रहता था। लाली शायद वह दिन कभी नहीं भूल सकेगी, जिस दिन सुन्दर को स्कूल से उठा लिया गया था और निहालचन्द की दुकान पर वह काम करने जाने लगा था। एक बार भी स्कूल छोड़ने का उसने विरोध नहीं किया। बस, घर आकर अपनी सब किताबें-कापियाँ एक कपड़े में बाँधकर उसने एक कोने में रख दीं। और यह बात पड़ोसियों तक से छिपी नहीं थी कि सुन्दर पढ़ने में बहुत तेज़ था, हमेशा अपनी जमात में पहले या दूसरे नम्बर पर पास होता था और एक बार उसके मास्टर ने भी आशा प्रकट की थी कि दसवीं में उसे आगे पढ़ने के लिए वज़ीफ़ा ज़रूर मिल जायेगा। लेकिन नानकचन्द पर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ा...सब जानते थे कि सुन्दर को पढ़ाई छोड़ने का बहुत दुख था, घर पर चाहे वह किसी से न कहे, या अपने आँसू न बहाये।

"पानी है, लाली, मुँह-हाथ धोने के लिए?" नानकचन्द ने लाल गमछे को अपने कंधे पर डालते हुए कहा।

"पानी अभी भाभी लेने गयी हैं, लौटती ही होंगी।"

नानकचन्द को तनिक क्रोध आ गया, "वह नल पर बातें कर रही होगी, उसे वही एक मौक़ा गप्पें लगाने का मिलता है...।" यह कहकर वह चारपाई पर बैठ गये।

लाली चूल्हे के कोयले में फूंक मारती हुई लकड़ियाँ सुलगाने लगी और जब धुआँ काफ़ी तेज़ी से उसकी ओर आता तो वह अपनी आँखें अपने घुटनों में छिपा लेती थी।

सुभागी को देखकर नानकचन्द का सारा क्रोध उभर आया, वह एक चादर अपने शरीर पर लपेटे हुए थी। उसके चौड़े मुँह पर उसकी बढ़ती हुई आयु के चिह्न स्पष्ट रूप से उभरते जा रहे थे। उसने अन्दर घुसते ही एक नज़र सारी झुग्गी के अन्दर डाली और फिर चादर उतारकर एक

कोने में रख दी। नानकचन्द चुपचाप चारपाई पर बैठे अपने होंठ फड़फड़ाते रहे।

"किसी को भी सुख नहीं है। जहाँ जाओ, वहीं सब अपना रोना रोते हैं...किसी की दुकान नहीं चलती, किसी के लड़के को काम नहीं मिलता और किसी की बहू बदचलन हो गयी है।"

सुभागी कभी नानकचन्द की ओर देख रही थी और कभी लाली की ओर...।

"पड़ोसियों के किस्से सुना करती हो, कभी अपने घर की तरफ़ भी देखा...!" नानकचन्द चारपाई से उठ खड़े हुए थे। उन्हें क्रोध बहुत कम आता था और जब आता था तो वह चुपचाप बैठे हुक्का ज़ोर-ज़ोर से गुड़गुड़ाने लगते थे और किसी के पूछने पर उसका जवाब नहीं देते थे। उनका क्रोध उदासीनता मे बदल जाता था, परन्तु जब कभी वे अपने विचारों और दिमागी परेशानियों को शब्दों मे प्रकट करते थे तब उनके मुँह मे कभी अस्पष्ट स्वर नहीं निकलते थे, उनकी साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगती थी और वे अपना दायाँ हाथ कभी ऊपर उठाते और कभी नीचे गिराते थे। "अब ज्यादा दिनों तक दुकान से खाने का सामान जुटाया नहीं जा सकता। दुकान का सारा सामान ख़त्म हुए जा रहा है, नयी चीज़ें लाने के लिए कभी पैसे नहीं होते...हुकम अभी तक बेकार है, देवू के 30 रुपये में क्या होता है और सुन्दर को हर तीसरे दिन बुखार चढ़ आता है। खाने वाले बढ़ते जा रहे हैं और फिर देवू का ब्याह...अगर ये तीनों ठीक तरह से कमाते होते तो मुझे फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं थी।"

सुभागी एक कोने मे खड़ी नानकचन्द की ओर घूर रही थी। अन्य दिनों तो वह घर पर अपना रोब जमाये रहती थी, परन्तु जब नानकचन्द नाराज़ होते थे तब उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता था। अपनी पुरानी स्मृतियाँ उसके दिमाग मे घूम जाती थीं। कभी-कभी वह सुभागी को पीटते थे, तब का भय अभी तक उसके मन से भाग नहीं सका था, यद्यपि उसे विश्वास था कि अब सफ़ेद बालों में जवान लड़के और लड़कियों के सामने वह उसे पीटेंगे नहीं, परन्तु फिर भी...।

"बाबू, तुम मुँह-हाथ धो डालो, मैं पानी ले आयी हूँ...," लाली ने

नानकचन्द के पास लोटा ले जाकर कहा।

"एक दिन जब बाहर भीख माँगने की नौबत आयेगी तो पता चलेगा। हुँ...मुझे इन सब झगड़ों से क्या?" नानकचन्द चारपाई पर लेटे हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और सुभागी और कौशल्या रसोई का काम निबटा रही थीं। लाली ने उनके सामने खाने की थाली लाकर रख दी और वह धुंधली रोशनी में बिना कोई आवाज़ किये चुपचाप खाने लगे।

सुन्दर की साँस तेज़ी से चलने लगी थी, जिसका स्वर झुग्गी की धीमी रोशनी में एक कोलाहल-सा पैदा कर रहा था। लाली ने उसके माथे पर हाथ रखा तो वह जल रहा था। उसने धीरे से सुन्दर के कंधे को पकड़कर हिलाते हुए पूछा, "दूध पियेगा, सुन्दर?"

सुन्दर ने जवाब न देकर एक ओर को करवट बदल ली और कम्बल में अपना मुँह छिपा लिया। लाली थोड़ी देर तक चुपचाप सुन्दर के पास बैठी रही, फिर झुग्गी के बाहर निकल आयी, अंदर उसका दम घुट-सा रहा था। देवू भी खाना खाकर बाहर एक पत्थर पर बैठा था, लाली उसके पास तक चली गयी।

"क्या आज फिर कुछ झगड़ा हुआ है, लाली?" देवू ने पूछा।

"आज कोई नयी बात थोड़े ही है, रोज़ का क़िस्सा है।" लाली ने बिना देवू की ओर देखे उत्तर दिया। बाहर हवा में सर्दी नहीं थी, लेकिन आज उसकी गति अवश्य तेज़ हो गयी थी।

"ये रोज़-रोज़ के झगड़े...हुँ! सारा दिन काम करके आओ, और रात को यहाँ सबके फूले हुए मुँह देखने को मिलें। यह भी क्या ज़िंदगी है...!"

लाली ने मानो देवू की बात सुनी नहीं। वह कह रही थी, "आज सुन्दर को फिर बुख़ार आ गया है, इस तरह वह बचेगा नहीं। उसका मुँह पीला पड़ता जा रहा है जैसे ख़ून की एक भी बूँद न हो, वह किसी से कुछ नहीं कहता, कभी अपनी बीमारी की चर्चा नहीं करता और घर में किसी को भी उसकी फ़िकर नहीं है। देवू, क्या तुझे सुन्दर पर दया नहीं आती?"

देवू चुप रहा...उसने कभी इस विषय में सोचा नहीं था। पहले जब

सोचता था तो बेकार में उसका दिल दुखता था और कुछ भी करने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी और आजकल तो घर और घर के प्राणियों के विषय में वह पूर्ण रूप से उदासीन हो चुका था।

"सुन्दर मर जायेगा, देवू, एक दिन इसी तरह लेटा-लेटा वह मर जायेगा और किसी को पता भी नहीं चलेगा—उसकी आखिरी सांस भी नहीं सुनेंगे...।" और लाली फूट-फूट कर रो पड़ी।

झुग्गी के अन्दर से फिर ज़ोर-ज़ोर की आवाज़ें आने लगी थी, जिन्हें वे दोनों स्पष्ट रूप से सुन सकते थे। नानकचन्द कह रहे थे, "मैं अब तुझे और तेरे बीवी-बच्चों को नहीं खिला सकता। अगर नौकरी नहीं मिलती तो कहीं और ठिकाना देख। इन सफ़ेद बालों में तुम्हारे लिए मैं भीख नहीं मांगूंगा।"

कौशल्या की ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ें आ रही थी और इस कोलाहल में दीनू भी जाग पड़ा था और अपनी मां को रोते देख वह भी गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा था। सुभागी चुप थी।

हुकम भी कुछ कह रहा था, लेकिन उसकी आवाज़ स्पष्ट नहीं थी। नानकचन्द फिर कह रहे थे, "मेरी ज़िंदगी बिगड़ गयी इन लोगों के मारे...नहीं तो मां-बेटे मिलकर घर संभालो और मैं कहीं चला जाता हूँ, मुझे दो रोटियों की कहीं कमी नहीं है।"

फिर कौशल्या का तीखा स्वर : "तुम बोलते क्यों नहीं? खिला नहीं सकते थे तो शादी क्यों की थी, मैं भी रात-दिन की इस किलकिल से तंग आ गयी हूँ...एक दिन मैं अपने गले में फांसी लगा लूंगी।" और फिर उसकी चीखें, गालियां और रोने की आवाज़ें हुकम कौशल्या को पीट रहा था और सुभागी रो रही थी।

लाली और देवू में से कोई भी अन्दर नहीं गया। देवू उसी प्रकार घुटनों पर अपनी ठुड्डी टेके बैठा था और लाली अपनी चुन्नी के अन्दर अपने हाथ छिपाये हुए थी।

तभी दोनों ने हुकम को झुग्गी में से निकलते देखा और वह तेज़ी से ऊपर सड़क की ओर चला गया, जहां मोटरों की तेज़ रोशनियां चमक रही थी। देवू और लाली—किसी ने भी उसे नहीं रोका। वे पत्थर की मूर्तियां

वने हुए थे। झुग्गी से अव भी रोने की आवाज़ें आ रही थीं, लेकिन रात के वढ़ने के साथ वे भी कम होती गयीं और जव वाहर विलकुल सन्नाटा छा गया तो अन्दर भी लालटेन वुझ गयी। लाली अन्दर चली गयी, लेकिन देवू कुछ देर के लिए अभी सड़क पर मोटर के हॉर्न सुनकर इनकी रोशनियाँ देख रहा था...सुन्दर का वुख़ार स्थायी रूप से रहने लगा, जव वुख़ार तेज़ हो जाता तो वह वड़वड़ाया करता था, सव घर वाले इसके अभ्यस्त हो गये थे। और तो सव सुन्दर के विषय में उदासीन थे, परन्तु नौनकचन्द कभी-कभी ग़ुस्से में सव घर वालों को कोसते वक़्त सुन्दर को भी नहीं छोड़ते थे। वह समझते थे कि आरम्भ से ही सुन्दर का पढ़ाना उनकी ग़लती थी, जिसे अव सुधारना उनके वश के वाहर की वात थी। अजमलख़ाँ रोड पर ईश्वरदत्त वैद्य की दुकान से कभी देवू और कभी लाली सुन्दर के लिए दवा ले आते थे। कभी उसका वुख़ार उतर जाता और वह अपने विस्तरे पर वैठकर झुग्गी के दरवाज़े से वाहर देखा करता था, परन्तु फिर दो-तीन दिन के वाद यकायक उसका शरीर तपने लगता और वह पुनः कम्वल के अन्दर पाँव सिकोड़ कर लेट जाता था। उसका मुँह पीला पड़ गया था और शरीर की हड्डियाँ पतझड़ में ठूँठों की भाँति उभर आयी थीं।

हुकम उस दिन घर से गया तो फिर वापस नहीं लौटा। अगले दिन भागी के कहने पर देवू वचनसिंह से छुट्टी लेकर स्टेशन पर उसे ढूँढ़ने गया था। उसने अनमने भाव से कुछ गाड़ियाँ भी देखीं, आने वाली और जाने वाली दोनों, प्लेटफ़ॉर्म के चक्कर लगाये और फिर पुल पार करके वह जमुना के किनारे रेत पर भी थोड़ी दूर तक गया। हुकम को ढूँढ़ निकालने की उसकी उत्सुकता तो समाप्त हो गयी और रोज़मर्रा की ऊवा देने वाली ज़िंदगी में कुछ परिवर्तन के विचार से वह सारा दिन शहर के चक्कर लगाता रहा। उसे हुकम के चले जाने का डर नहीं था, आख़िर वह वड़ा है, कहीं काम की तलाश में निकल गया होगा। विना कहे चला गया तो इसमें अनोखी कौन-सी वात हुई!

एक दिन देवू काम करके शाम को लौट रहा था तो रास्ते में जग्गी मिल गया। जग्गी से देवू की कोई विशेष मित्रता नहीं थी, जव रास्ते में कभी मुठभेड़ हो जाती थी तो जग्गी हँसकर उस पर कोई वाक्य कस दिया

करता था, कभी देवू उसका जवाब दे देता और कभी जवाब न देने पर हँसकर वह आगे बढ़ जाता था।

"सुना देवू, तेरा ब्याह होली पर हो रहा है न?" जग्गी ने मुसकराते हुए पूछा।

"हो जायेगा, अभी जल्दी क्या है? तू अपने हाल-चाल बता, क्या कर रहा है?" वह आजकल अपने ब्याह की चर्चा किसी से नही करता और किसी के पूछने पर उसको टाल देता था।

"मैं क्या काम करूँगा, देवू? दो वक्त का पका-पकाया खाना बाप तैयार रखता है, और मुझे कुछ नही चाहिए। मुझसे काम नहीं हो सकता...।"

"और पीना क्या छोड दिया?"

जग्गी ने ठहाका लगाया, "कभी-कभी यार लोग पिला देते है, देवू? पीना कोई बुरी बात नही है; जो पीते नही उनमे हज़ारों तरह के ऐब होते है, लेकिन फिर भी वे शरीफ समझे जाते हैं .।"

दोनों साथ-साथ सड़क पर चलने लगे। देवू के दोनो हाथ साइकिल की मैल, तेल, ग्रीज़ आदि मे सने हुए थे और उसके मुँह पर भी उसकी काली उँगलियों के दो-तीन निशान बने हुए थे। कैंप कॉलेज के लड़के साइकिलों के पीछे अपनी किताबें बाँधे तेज़ी के साथ घंटी बजाते हुए अपने घरों की ओर चले जा रहे थे। कभी-कभी मोटर या बस की तेज रोशनी मे साफ़ सड़क चमक उठती थी और किनारे के कच्चे फुटपाथ की धूल तेज़ी से ऊपर की ओर उठती थी।

"हाँ देवू, मैं भूला जा रहा था। क्या हुकम अभी तक नहीं लौटा?"

देवू ने अपनी गरदन हिला दी।

"मुझे कभी-कभी शक होने लगता है, देवू, कि...," और जग्गी ने देवू की ओर देखकर हकलाते हुए कहा, "कहीं हुकम ने...आत्महत्या तो नहीं कर ली?"

देवू के मन मे यह विचार दो-चार बार पहले भी उठा था, परन्तु उसने इसे कोई महत्व नही दिया था। हुकम आत्महत्या नहीं करेगा, वह इतना भावुक नही है और उस दिन की घटना कोई इतनी आकस्मिक एव

भयानक नहीं थी कि वह आत्महत्या करे। वह घर से चला गया, उस दिन नहीं तो फिर कभी किसी दिन चला जाता। शायद वह बम्बई चला गया हो...एक वार उसने इसकी चर्चा भी की थी।

जग्गी ने फिर दवे स्वर में कहा, "तेरी भाभी को तो वड़ा अफ़सोस हुआ होगा?"

देवू कुछ नहीं वोला...लेकिन वह जानता था कि कौशल्या को भी हुकम की अनुपस्थिति अखरती नहीं। वह जानती थी कि वाहर जाकर कुछ-न-कुछ कमा ही रहा होगा...।

घर पहुँचा तो सुभागी भरी वैठी थी। देवू को देखकर वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी और मानो अपने ही आप से कह रही थी, "आप गया था तो इस कुलटा को भी अपने साथ ले जाता। यहाँ मेरी नाक कटवाने को छोड़ गया। पानी भरने के वहाने नल पर क्या जाती है कि वहाँ घंटों लगा देती है, आदमियों के सामने नहाती है और मर्दों को देखकर मुसकराती है... सव पास-पड़ोस वाले देखकर हँसते हैं और आपस में कानाफूसी करते हैं। वात करो तो उलटे सिर पर सवार हो जाती है...।"

जव से हुकम गया था तव से सुभागी और कौशल्या के संवंध दिन-प्रतिदिन विगड़ते जा रहे थे। सुभागी एक कहती थी तो उसे चार सुननी पड़ती थीं। पड़ोस में भी दोनों एक-दूसरे की वुराइयाँ करती थीं। सुभागी ने यह नया हथियार सोच निकाला था कि वह उसको चरित्रहीन कहे तो उसका जवाव कौशल्या के पास कोई न होगा।

"मेरा वुढ़ापा विगाड़ने के लिए हुकम इस नागिन को यहाँ छोड़ गया है। किसी घर के काम को कहो तो शर्म आती है, लेकिन वाहर के नाम एकदम उछल पड़ती है। मुझमें अव इतना दम नहीं कि पानी भरूँ। नहीं तो उसे पानी भरवाने को कभी न कहती। कैसा वक़्त आ गया है...!"

कुछ देर के लिए झुग्गी में सन्नाटा छा गया। भाभी सुन्दर के सिरहाने वैठी कुछ काढ़ रही थी और सुन्दर चुपचाप लेटे हुए खुली आँखों से छत की ओर देख रहा था। सुभागी की वात सुनकर दोनों में से कोई नहीं चौंका। वे दिन-भर इस प्रकार की वातें सुना करते थे।

यकायक सुभागी की कही हुई वातें देवू के सामने एक नया विचार,

एक नयी उलझन बनकर आ खड़ी हुई ।

शायद उसकी शादी के बाद यदि लिट्टो ने भी इसी प्रकार का व्यवहार शुरू कर दिया तो. घर के इस वातावरण मे और देवू के अधिक न कमाने के कारण यदि वह भी इस विवाहित ज़िंदगी से तग आकर...देवू चौंक गया। विवाह का जितना आकर्षण और जितनी प्रसन्नता थी उस सबके बदले एक गहरी आशका फूट पडी। उसका बदन एक बार सिर से लेकर पैर तक कांप उठा। उसने अपने मैल और ग्रीज से भरे काले हाथ देखे...।

बाहर अँधेरा बढता जा रहा था। कभी-कभी अनगिनत पक्षियो के झुंड बसेरा लेने के लिए झुग्गी के ऊपर शोर मचाते हुए आगे निकल जाते थे और शाम का सूनापन और भी गहरा होकर छा जाता था।

सुन्दर कराह रहा था। सिर की पीडा के कारण कभी-कभी वह चिल्ला उठता था और लाली तवे जैसे जलते माथे से उसके बालो की लटें हटाकर धीरे-धीरे माथा दबाने लगती थी। पिछले दो-तीन दिनों से लाली बहुत कम बाहर जाती थी। वह दिन-भर सुन्दर के पास बैठी रहती थी। जब सुन्दर होश में होता तो धीरे-धीरे उससे बातें करती थी—घर की, बाहर की, पिछले बीते दिनो की और आने वाले भविष्य की . सुन्दर चुपचाप आँखें खोले उसकी बातें सुनता रहता था। कभी-कभी किसी हँसी की बात पर उसके होंठ कोनो से खिच जाते थे। परतु वह बोलता बहुत कम था।

शाम को नानकचन्द अपनी दुकान बद करके लौटे और खाना खाकर हुक्का गुड़गुड़ाते हुए सुभागी से कहने लगे, "आज रलियाराम दिन मे दुकान पर आये थे...।"

सुभागी ने उत्सुकता से पूछा, "क्या ब्याह की तारीख ?"

"मेरी बात तो सुन लो। मेरी समझ मे नही आता कि तुम्हे देवू का ब्याह करने की ऐसी कौन-सी हाय-तोबा मची हुई है ? एक का ब्याह करके तो देख लिया, अब दूसरे पर उम्मीदें लगा रही हो !"

देवू की आँख लगने ही वाली थी, लेकिन रलियाराम का नाम सुनकर उसके कान खडे हो गये और वह लेटा-लेटा ही उनकी बाते सुनने लगा . सुन्दर के कभी-कभी कराहने से उसे बात स्पष्ट रूप से सुनायी नही देती थी और उसे सुन्दर पर क्रोध आता था।

"उनकी लड़की को पिछले एक हफ़्ते से बुखार है...वैद्यजी को टाइफ़ाइड होने का डर है।"

देवू चौंक पड़ा। अगर परिस्थिति का ज्ञान उसे क्षण-भर पहले न हो जाता तो वह अपने बिछौने से उठ पड़ता।

"मैं कल ही लिट्टो को देखने जाऊँगी। अभी दस-बारह दिन पहले तो वह मुझे बाज़ार में मिली थी, अचानक यह बुखार कैसे आ गया...?"

"यह सब तो तुम पता लगा लेना—मैं कोई डाक्टर-वैद्य तो हूँ नहीं जो बीमारी का पता लगाने जाऊँगा," नानकचन्द की आवाज़ में खीझ थी, "रलियाराम कह रहे थे कि शायद होली पर ब्याह न हो सके...।"

"क्या ज़रा-से बुख़ार से वह ब्याह टाल देना चाहते हैं? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं कल ही उनके घर जाऊँगी...उनकी मर्ज़ी नहीं चलेगी, वह लड़की वाले हैं।" सुभागी के मन में लड़के की माँ होने का अभिमान जाग उठा था। रलियाराम से उसने बहुत उम्मीदें बाँध रखी थीं। दूसरे, लिट्टो को अपने साथ मिलाकर वह कौशल्या को नीचा दिखाना चाहती थी।

नानकचन्द ने क्रोध और खीझ में एक हँसी का ठहाका लगाया और हँसी के साथ-साथ उनकी खाँसी भी उभर आयी। हुक्के की नली को क्षण-भर के लिए उन्होंने अपने मुँह से दूर कर दिया। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें उनकी खाँसी के साथ नीचे-ऊपर की ओर हिल रही थीं, "हाँ, बेटे की माँ...ज़्यादा कुछ कहोगी तो वे सगाई तोड़कर अपनी लड़की का ब्याह कहीं और कर लेंगे, उन्हें लड़कों की कमी नहीं है। जिसके हाथ में चार पैसे रखेंगे वही उनकी बेटी का हाथ थामने को तैयार हो जायेगा...।"

"बस...चुप रहो जी। तुम्हें क्या हो गया है? ऐसी बातें कहते तुम्हें दर्द नहीं होता, मेरा देवू सलामत रहे।" और फिर थोड़ी देर पश्चात वह बोली, "मैं रलियाराम की औरत को जानती हूँ, वह एक बार वचन देकर दुबारा उसे नहीं तोड़ती। सगाई तोड़कर उसे बिरादरी में बदनामी ही मिलेगी...।"

"लेकिन यह बात पक्की है कि वे होली पर ब्याह नहीं करेंगे। हमारे लिए तो यह अच्छा ही है। ब्याह के लिए रुपया भी तो जुटाना पड़ेगा।"

...और उन्होंने फिर हुक्के की गुड़गुड़ शुरू कर दी।

सारी झुग्गी में वही तो एक आवाज थी जो देवू को शांत किये हुए थी। उसका बाप कितना निर्दयी था, जो हँसते-हँसते इतने सहज भाव में कह सकता था कि रलियाराम उनसे ब्याह का संबंध तोड़ लेंगे। लिट्टो को क्या हुआ...मामूली-सा बुखार होगा...या शायद किसी डॉक्टर ने उन्हें डरा दिया है कि उसकी बीमारी खतरनाक है। उसे बीमारी का नाम याद नहीं रहा था। वह कल ही लाली से कहेगा कि वह रलियाराम के घर जाकर लिट्टो को देख आये और उसका हाल पूछ आये ..और फिर कितनी ही देर तक देवू को नींद नहीं आयी। अँधेरे में भी वह अपनी आँखें खोले कभी दीवार की ओर, कभी छत की ओर देखता रहा।

फाल्गुन का महीना आया। पेड़ों के गिरे पत्तों के ढेर हवा के चलने के साथ-साथ आगे बढ़ते या कभी ऊपर उड़कर फिर घायल पक्षी की भाँति नीचे आ गिरते। बस्ती के लोग इन सूखे पत्तों का ढेर अपनी झुग्गियों के सामने जमा करके छोटी-सी आग सुलगा लेते और उसके चारों ओर बैठकर उसकी आग सेंका करते थे। सर्दियाँ जैसे-तैसे बीत गयीं। हवा में सर्दी घट रही थी और दिन की धूप में अब पसीना आने लगता था। लेकिन सवेरे-शाम की सर्दी अब भी कँपकँपा देती थी और तड़के ही एक हल्की-सी धुंध झुग्गियों के ऊपर वाली पक्की सड़क को छिपा लेती थी।

शाम को कितनी ही बारातों के बैंड, और दूल्हे के लिए सजी हुई घोड़ियाँ और फूलों के हारों से ढँकी मोटरें सड़कों पर दिखायी देती थीं। रात को बहुत देर तक लाउडस्पीकर में बजते हुए फ़िल्मी गानों के रिकॉर्ड दूर-दूर तक अपनी आवाजें पहुँचाते थे।

देवू को फाल्गुन में अपने ब्याह न होने का विशेष दुख हुआ हो, ऐसी बात नहीं थी। अपनी सगाई के बाद जब कभी वह विवाह के विषय में सोचता था तभी एक अजीब-सी कँपकँपी में उसका दिल धड़कने लगता था। घर का इस प्रकार का वातावरण, सुभागी और कौशल्या के झगड़े, सुन्दर की बीमारी और लाली का चुपचाप मेजपोशों और चादरों पर फूल काढ़ना आदि तो था ही, लेकिन इनके अलावा भी लिट्टो को ब्याह कर इस बस्ती में जो दूसरे विवाहित दम्पति रहते थे उनकी तरह अपनी ज़िंदगी

वसर नहीं कर सकेगा। और अव यकायक उसका विवाह आगे खिसक जाने की जो वात हुई उससे उसे दुख और प्रसन्नता—दोनों ही हुई। काम से लौटते समय या रात को अपनी झुग्गी में बैठकर जव बैंड और फ़िल्मी रिकॉर्ड उसे सुनायी देते तो अनायास ही वह अपने विचारों में खो जाता था और उसके सामने विना कोशिश किये लिट्टो का धुँधला-सा चेहरा घूम जाता था। लिट्टो को उसने कई वार देखा हो सो वात भी नहीं थी, लेकिन वहुत दिनों तक लगातार उसकी कल्पना करने से उसकी एक आकृति उसके मस्तिष्क में वन गयी थी।

वचनसिंह किसी काम से कुछ दिनों के लिए अम्वाला गया हुआ था अत: देवू की छुट्टी थी। अपनी अनुपस्थिति में वह देवू को दुकान खोलने की इजाज़त नहीं देता था, क्योंकि देवू पर अभी तक उसको विश्वास नहीं था। देवू सवेरे देर से उठता और फिर या तो देवनगर जाकर धीरजसिंह की दुकान पर बैठ जाता, या कभी वस्ती के चक्कर लगाता, तालाव के किनारे वैठी स्त्रियों को कपड़े धोते हुए देखता।

"लाली, कल तू लिट्टो को देखकर आयी थी न?" अभी तक वह विना किसी हिचकिचाहट के लिट्टो के विषय में लाली से वातें नहीं कर पाता था। लिट्टो का नाम लेते ही उसका चेहरा कनपटियों तक लाल हो जाता था।

"वह ठीक है देवू, तू इतनी फ़िक्र क्यों करता है? बुख़ार तो उतर गया है, लेकिन वह अभी कमज़ोर है, कमजोरी भी धीरे-धीरे चली जायेगी।" लाली वोली।

देवू लाली की दृष्टि से वचने के लिए दूसरी ओर देखने लगा। "वचन-सिंह कहता था कि मियादी वुखार के वाद वीमार की ठीक तरह से देख-भाल होनी चाहिए, नहीं तो फिर वुखार होने का डर होता है...।"

"उसके माँ-वाप उसका ध्यान रखते हैं, देवू। वह फलों के रस पीती है, वैद्य की दवाई खाती है और दूध पीती है...हमारे जैसे वे नहीं हैं कि वीमार के लिए दवा-दारू का इंतज़ाम भी ठीक से नहीं होता...।" लाली ने अपनी गरदन झुका ली, शायद अपने आँसुओं को रोकने का प्रयास कर रही थी।

देवू अपनी घुन में इतना मस्त था कि वह लाली के अन्तिम इशारे को समझ नही सका .उस समय सुन्दर उसके विचारो से दूर...वहुत दूर था। वह धीमे स्वर मे बोला, "हां.. वे हमारे जैसे नहीं है, उनका लड़का वैक मे काम करता है, वह साइकिलो में हवा नही भरता।"

"देवू .!" लाली ने देवू के चेहरे की ओर वड़े ध्यान से देखा, फिर थोडी देर तक चुप रहने के बाद उसने देवू की ओर देखते हुए कहा, "क्या हुकम ने कभी तुझसे कही बाहर जाने का जिक्र किया था ?"

"तुझे पता है लाली, कि हम दोनो मे कभी घुल-मिल कर बातें नहीं होती थी। हुकम ने शायद ही किसी को अपने मन की बात बतायी होगी। बस, एक दिन जग्गी के सामने वह कह रहा था कि बम्बई मे जहाजो मे काम करने की नौकरी आसानी से मिल जाती है . लेकिन उसके पास बम्बई जाने के पैसे कहां से आये ?"

"तो हुकम बम्बई चला गया . तीन महीनों से उसने एक खत तक नही लिखा। भाभी से कभी बात करो तो वह चुप रहती है। बेचारा दीनू...!"

थोडी देर बाद देवू बाहर चला गया। सूरज छिपने वाला था. लेकिन अभी तक उसकी रोशनी काफ़ी मात्रा मे फैली हुई थी। बिना किसी उद्देश्य के वह एक पगडंडी पर आगे बढ़ने लगा। वह सामने देख रहा था, बिना किसी नियम के स्वय ही उगे हुए पेडो की ऊपरी पत्तियां सूरज के प्रकाश मे चमक रही थी, उन्ही के पीछे खंडहर बनी हुई पुरानी मसजिद की सफेद दीवार का कुछ अंश दिखायी देता था। आस-पास कांटे वाली झाड़ियाँ ऊँची-नीची सतह बनाती हुई पगडडी के दोनो किनारो पर इस प्रकार खडी थी, मानो सीमा पर सिपाही खड़े हो...देवू इन सबको देखता हुआ भी 'नहीं' के बराबर ही देख रहा था।

आगे जाकर तालाब से थोड़ी दूर पर एक छोटे-से मैदान मे बस्ती के कुछ बच्चे गुल्ली-डंडा खेल रहे थे और मैदान के एक कोने मे आस-पास के इलाको से जमा किये हुए गन्द और कूडा-करकट से भरे लोहे के बड़े-बडे पीपो मे कुछ सूअर, गाय, बैलो के झुड अपना भोजन तलाश कर रहे थे, कभी-कभी किसी गाय या बैल द्वारा सूअर को हटाने के लिए सींग मारने

से सूअर भयानक स्वर में चिल्ला उठता था। वस्ती के कुछ वच्चे भी इन ढेरों में से जले हुए कोयले ढूंढ रहे थे।

मुझे कोई दूसरी नौकरी तलाश करनी चाहिए—देवू सोच रहा था—वचनसिंह की दुकान पर आख़िर कव तक काम करता रहूँगा? थोड़ा पढ़ा-लिखा होता तो शायद इन वसों में टिकट देने का काम मिल जाता, शंभू व आठ घंटे ड्यूटी देनी पड़ती है और हर महीने 105 रुपये मिल जाते हैं, गर्मी और जाड़ों की वरदी मिलती है सो अलग और वस में जो मुफ़्त में सारे शहर का चक्कर लगाने का जो मज़ा आता है...देवू को पढ़ाया नहीं और अव सुन्दर को भी स्कूल से हटा लिया। लेकिन शायद सुन्दर पढ़ कर भी कुछ न करता, नौकरी पाने के लिए थोड़ी चालाकी की ज़रूरत होती है, जो सुन्दर में नहीं के वरावर है। लेकिन आख़िर सुन्दर अकेला लेटा-लेटा सोचा क्या करता है? क्या उसका जी ऊव नहीं जाता?

तालाव के सामने से वापिस घर को लौटती हुई कुछ स्त्रियों के झुंड गा रहे थे और उन सव की आवाज़ मिलकर एक धीमा-सा अस्पष्ट कोलाहल पैदा कर रही थी, देवू कोशिश करने पर भी गाने के शब्द समझ नहीं सका, लेकिन फिर भी उनकी आवाज़ उसे मधुर लगी। अँधेरा वहुत तेज़ी के साथ वढ़ता जा रहा था। देवू ने ज़मीन से एक ढेला उठाकर तालाव में फेंका और फिर पानी में वनते हुए गोलाकारों को देखता रहा। तालाव के सड़ते हुए पानी की दुर्गन्ध उसके चारों ओर फैल रही थी। देवू ने जेव में से वीड़ी का पैकेट निकालकर एक वीड़ी सुलगायी और मुंह से धुआँ वाहर निकालकर वह उसकी वनती और विगड़ती आकृतियों को ध्यान से देखने लगा।

घर लौटते समय काफ़ी अँधेरा हो चुका था। मैदान से वच्चों की टोलियाँ अपने घरों को वापिस लौट गयी थीं। तालाव से वस्ती जाने वाली पगडंडी पर स्त्री-पुरुषों के झुंड कभी-कभी आते-जाते दिखायी देते थे। नल पर भी तीन-चार स्त्रियाँ खड़ी पानी भर रही थीं और परस्पर वातें करती जा रही थी।

तभी पगडंडी से थोड़ा हट कर एक चट्टान के किनारे देवू ने जग्गी को किसी से वातें करते देखा। वह कोट की जेवों में हाथ डाले था...उसके

पास खडी स्त्री को पहचानते ही देवू का मन सिहर उठा। वह कौशल्या थी, उसके एक हाथ मे पानी की भरी हुई बालटी थी, उसकी चुन्नी हवा में उड रही थी। घर मे कौशल्या के विषय मे सुनी हुई सारी बातें उसके दिमाग में घूम गयी।

कौशल्या जग्गी से क्या बातें कर रही है? और उसे याद आया कि कुछ दिन पहले जग्गी ने भी उससे कौशल्या के विषय में पूछा था। शायद जग्गी कौशल्या से घर की बातें कर रहा हो? लेकिन जग्गी ठीक आदमी नही है—जग्गी से सबधित सारी स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में घूम गयी, किस तरह एक बार रात को उसने उसे लडखडाते हुए देखा था, उसके मुँह से शराब की बू आ रही थी, वह एक स्त्री का नाम लेकर उसके विषय में कुछ बातें कह रहा था, वह कहता था कि वह अपने बाप की हत्या करके उसका धन हडप लेगा। और कौशल्या उसके पास खडी उससे बातें कर रही थी, जग्गी हँस रहा था. लाख अपने को सात्वना देने पर भी एक आशका देवू के मन मे छिपी ही रही, जिसे वह दूर नही कर सका।

उस रात को कितनी ही देर तक वह इसी घटना के विषय में सोचता रहा।

सर्दियो का कोहरा और रात को सूखे पत्तों और डालियो का जलना खत्म हो गया। दिन में सूरज के नीचे बैठना असम्भव हो रहा था और पेडों से छनती हुई हवा काम करने वालो के पसीने को सुखाया करती थी। बस्ती के एक किनारे पर ऊँचाई पर रोडी कूटने का एक कारखाना खुला था, जिसके चलने की आवाज दिन-भर गूँजा करती थी। इसके पास पत्थरों के छोटे-छोटे काले और सफेद टुकडो के पहाड बनते और फिर ट्रकों में भरकर उन्हे मकान बनवाने वाले ठेकेदार ले जाते। आस-पास के गाँवों और बस्तियों मे रहने वाले कुछ मजदूर और उनकी स्त्रियाँ कारखाने में काम करती थी, कुछ परिवार तालाब के ऊपर, जहाँ थोडी-थोडी समतल भूमि के बिखरे टुकड़े थे, अपनी झोपड़ियाँ बनाकर बस गये थे और कुछ

को काम समाप्त करके अपने बच्चों को अपनी पीठ पर बाँधे अपने घरों की ओर रवाना हो जाते थे। बस्ती में रहने वाले भी कुछ लोग कारखाने में काम करने लगे थे। जिनको मिलों और कारख़ानों में काम करना अपनी हैसियत से नीचा मालूम देता था वे दूसरे लोगों से उनकी चर्चा किया करते थे और बुरे समय और अपने भाग्य की दुहाई दिया करते थे। कारख़ाने से बस्ती की ज़िंदगी में थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हुआ था, लोगों को अपना समय काटने का एक और विषय मिल गया था।

लाली बैठी हुई धीरे-धीरे कुछ गुनगुना रही थी। उसके बाल हलकी हवा के झोंकों से ऊपर उड़ रहे थे, उसकी चुन्नी खिसक कर उसके कंधे से नीचे लटक रही थी और उसकी आँखों में एक गम्भीरता छायी हुई थी। उसी के पास सुन्दर एक नीचे की ओर झुकती चारपाई पर लेटा हुआ कभी आँखें बंद करके और कभी आँखें खोले आसमान की ओर देख रहा था। उसके चेहरे पर भी पहले की-सी उद्विग्नता और अधीरता नहीं थी, जो बीमारी के पहले दिनों में छा गयी थी। उसके मुख का पीलापन और आँखों की मुर्दनी में शोक या चिन्ता की छाया नहीं थी, उसने अपनी बीमारी को मानो दोनों हाथों से अब बेबस होकर अपने में समेट लिया था, उससे संघर्ष करने की अब न तो उसमें शक्ति थी और न ही उसकी इच्छा। सारा दिन चुपचाप लेटे रहना, या कभी-कभी थोड़ी देर के लिए बैठ जाना और सिर चकराने पर फिर लेट जाना—यही उसका कार्यक्रम था। कभी वह दिन-भर सोता रहता था और रात को अँधेरे में आँखें खोल कर लेटे हुए कितने ही विचार उसके मन में आते थे।

"सुन्दर, क्या अब भी उठने पर तेरा सर चकराता है?" लाली ने बिना सुन्दर की ओर देखे हुए पूछा।

"हूँ...!" अपनी बीमारी के विषय में सुन्दर किसी से अधिक बातचीत करना पसन्द नहीं करता था। जब वैद्यजी को उसका हालचाल बतलाने कभी देबू या लाली जाते थे तब भी सुन्दर बहुत संक्षेप में उनके प्रश्नों का उत्तर दे दिया करता था।

"इस बार जब मुझे अपने सिलाई के 'सेंटर' से रुपये मिलेंगे उनसे मैं तेरे लिए दूध बाँध लूँगी। बिना दूध पिये भला तेरी कमज़ोरी कैसे जा

सकती है...?"

"लाली, कोई और बात कर। तू हमेशा मेरी बीमारी की ही क्यों चर्चा किया करती है ?"

लाली ने इस बार ध्यान से सुन्दर की ओर देखा, परंतु क्या कभी वह सुन्दर के चेहरे को देखकर उसके मन के भावों को जान सकने मे सफल हुई है ? हमेशा ही सुन्दर का चेहरा उसके लिए एक अभेद्य दीवार से कम नही रहा।

थोड़ी देर बाद यकायक लाली हँसने लगी। सुन्दर ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"मैं सोचती हूँ, सुन्दर, कि देबू को अपना ब्याह करवाने का कितना शौक है...अभी परसों उसने लाल झुमकों की एक जोडी मुझे लिट्टो को देने के लिए दी थी। मैंने देबू को नही बताया, सुन्दर। लेकिन लिट्टो रोने क्यों लगी ? वह मुझसे लिपट गयी। और उसने कहा कि मैं उसकी माँ से इन झुमकों के बारे में कुछ न कहूँ...एक दिन भाभी भी बतला रही थी कि हुकम ने उसको शादी से पहले एक रेशमी रूमाल दिया था.. लेकिन आज वह भाभी को छोड़कर चला गया...।" फिर क्षण-भर बाद हँसी की आवाज में उसने कहा, "और शायद एक दिन देबू भी लिट्टो को हमारे घर छोड़ कर कही चला जायेगा...!"

"देबू का ब्याह होली पर क्यों नही हुआ, लाली ?"

"लिट्टो के माँ-बाप शायद तब ब्याह करना नही चाहते थे, लिट्टो बीमार थी न, सुन्दर...लेकिन अब ठीक हो गयी है वह।"

थोड़ी देर बाद सुन्दर बोला, "लाली, क्या हुकम मर गया ?"

"क्या कह रहा है, सुन्दर ! ऐसी बुरी बातें क्यों मुँह से निकाल रहा है ?" लाली ने तेज स्वर में सुन्दर को देखते हुए कहा।

सुन्दर चुप रहा। वह अँधेरे मे डूबती हुई सामने वाली चट्टान को देखते हुए कह रहा था, "मैं जानता हूँ कि हुकम मर गया, तभी उसने एक भी चिट्ठी नही लिखी।"

लाली इस बार चुप रही। जब कभी उसके मन में हुकम की मृत्यु का विचार आता था तब वह अपने तर्कों द्वारा उसे दूर करने का उपाय करती

थी। लेकिन सुन्दर के अन्तिम वाक्य को सुन कर उसकी बात का विरोध करने का साहस उसे नहीं हुआ। फिर भी उससे चुप न रहा गया, वह बोली, "वह जानता है कि घर में किसी को उसकी परवाह नहीं है—वह चिट्ठी न भी लिखे तो किसी को उसका दुख नहीं होगा। कभी-कभी तो मुझे ऐसा मालूम देता है जैसे भाभी को भी हुकम की याद कभी नहीं आती।"

तभी दीनू रोता हुआ उनकी ओर आया। उसके एक हाथ से ख़ून निकल रहा था और ख़ून के छींटे उसकी कमीज़ और पैरों में भी लगे हुए थे। लाली ने उसका हाथ पकड़ कर पूछा, "क्या हुआ, दीनू...क्या कहीं गिर गया था? ओह, कितना ख़ून निकल रहा है!"

दीनू रोता रहा...लाली के हाथ पकड़ने पर और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

"कैसे चोट लगी है दीनू, क्या शीशा चुभ गया?"

दीनू रोता हुआ बोला, "एक लड़के ने पत्थर मार दिया...और बड़ा दर्द हो रहा है।"

"अभी ठीक हो जायेगा, रो नहीं, मैं पट्टी बाँध देती हूँ।" यह कह कर वह उसे झुग्गी के अंदर ले गयी।

सुन्दर चारपाई पर उठकर बैठ गया और उसने चारों तरफ़ एक नज़र डाली। ऊपर सड़क पर लोगों के आने-जाने का तांता लगा हुआ था, बायीं ओर रोड़ी कूटने के कारख़ाने की छोटी-सी इमारत दिखायी दे रही थी और उसकी मशीन चलने की आवाज़ वहाँ तक आ रही थी। सुन्दर का सिर चकराने लगा, अतः ज़्यादा न बैठ कर वह फिर लेट गया और उसने अपनी आँखें बंद कर लीं।

लाली थोड़ी देर बाद आकर फिर बैठ गयी, "भाभी को दीनू से ज़रा भी मुहब्बत नहीं है। कभी उसका ख़याल नहीं रखती, न जाने बाहर क्या करती रहती है!"

सुन्दर चुप रहा। घर के किसी भी व्यक्ति के विषय में ऊपर से तो कभी ही वह बोला है, बल्कि अन्दर भी कम ही सोचने की कोशिश किया करता था। पहले तो जब वह स्कूल में पढ़ता था तो इस ओर कभी सोचने का मौक़ा ही नहीं मिलता था, केवल पिछले तीन महीनों से, जब से उसकी

पीठ खाट पर लगी है तब से कभी-कभी वह एक-एक व्यक्ति की सूरत अपने सामने लाकर उसके विषय मे सोचा करता था—उसका अतीत, उसके साथ संबंधित अतीत की स्मृतियाँ। और फिर उनके भविष्य को साकार बनाने का प्रयास किया करता था, परंतु प्रायः उसका बहुत-सा समय किसी के भी विषय में न सोचने पर ही बीत जाता था। झुग्गी के अंदर होता तो रसोई का सामान, खूँटियो पर टँगे हुए कपड़े, चारपाइयाँ, इधर-उधर छलाँगें लगाती हुई चुहियों आदि को वह देखता और बाहर लेटकर यह कि कौन-कौन से रंगो के परिंदे झाडियो से उछलते-कूदते है, उनकी चोंचो का क्या रंग है, आदि-आदि।

कौशल्या दूर पगडंडी से नीचे उतरती दिखायी दी। वह एक काला दुपट्टा ओढ़े थी। लाली और सुन्दर को बाहर बैठे देखकर वह तनिक घबरा-सी गयी, फिर मुसकराने लगी। उसका चेहरा खिला हुआ था। इन रंग-बिरंगे कपड़ों में वह बड़ी अजीब-सी लग रही थी। उसका भारी शरीर और ठिगना कद स्पष्ट रूप से ही पहचाना जाता था, मानो उसकी नग्नता इन कपड़ों से भी ढँकी नहीं थी, कोई भी व्यक्ति इस पोशाक के भीतर छिपे हाड़-मांस के टुकड़ों की सही रूपरेखा और आकृति का अंदाज सहज में ही लगा सकता था। हुकम के गायब हो जाने के पश्चात कौशल्या अधिक निखर आयी थी, वह स्वतंत्रता से आती-जाती थी और सुभागी के कुछ कहने पर उससे झगड़ा करने के बजाय वह चुप रह जाती थी।

"मुझे देर हो गयी, मैं देवनगर मे अपनी मौसी की लड़की के घर चली गयी थी, उससे मिले बहुत दिन हो गये थे।" लाली और सुन्दर दोनों की ओर मुसकराकर देखते हुए कौशल्या ने कहा।

सुन्दर दायीं ओर की पगडंडी पर फैक्टरी मे काम करने के बाद घर लौटते हुए मजदूरों की टोली को देख रहा था, जिनके संगीत का स्वर उसके कानो में पड़ रहा था। लाली बिना किसी मुद्रा के कौशल्या की ओर देखती रही, मानो यह बात जानने का प्रयास कर रही हो कि कौशल्या ने सत्य कहाँ तक बोला है!

"उनका पक्का मकान है, वह कभी-कभी सिनेमा भी देखती है और कहती थी कि अगले महीने जीजाजी की और भी तरक्की होगी। जीजाजी

का स्वभाव भी वहुत नरम है, वह वड़ा चाहते हैं सुखदा को। दो महीने पहले उसके लिए एक हाथ की घड़ी ख़रीद कर लाये थे। वहुत क़िस्मत वाली है, नहीं तो मेरी मौसी के पास तो दो वक़्त की रोटी भी मुश्किल से जुटती थी...।" कौशल्या मानो मशीन की तरह वोल रही थी। लाली और सुन्दर की उदासीनता देखकर थोड़ी देर वाद वह झुग्गी के भीतर चली गयी।

लाली एकाएक ठहाका लगाकर हँसी जिससे सुन्दर ने चौंककर उसकी ओर देखा, लेकिन उसके हँसने का कारण पूछने की उसमें उत्सुकता नहीं थी।

लाली स्वयं ही वोली, "भाभी कितना झूठ वोलती है ! अभी परसों ही कह रही थी कि सुखदा अपनी माँ के पास फ़िरोजपुर गयी है, एक ही दिन में क्या वह लौट भी आयी ? भाभी शायद भूल गयी थी कि उन्होंने मुझे यह वात वतायी थी, नहीं तो वह कोई दूसरा वहाना वना लेतीं...और मुझसे कुछ भी कहने की भला क्या ज़रूरत थी ?"

"लाली, मेरी चारपाई अन्दर विछा दे, मुझे सरदी-सी लग रही है।" सुन्दर वोला।

लाली के दिमाग़ से क्षण-भर में कौशल्या का विचार भाग गया। उसने गम्भीर भाव से सुन्दर के चेहरे की ओर देखा, "सरदी लग रही है ? तो क्या आज रात को फिर वुख़ार चढ़ेगा ? लेकिन वैद्यजी ने तो दस दिन पहले कहा था कि अव वुखार फिर कभी नहीं चढ़ेगा...।"

इस वार सुन्दर हँसा, लेकिन उसकी हँसी में आवाज़ नहीं थी। "तू वैद्यजी पर विश्वास करती है, लाली ? वह झूठी दिलासा देना जानते हैं और उसके पैसे लेते हैं...वस, इससे ज्यादा और कुछ नहीं जानते।"

"हूँ...तुझे चारपाई पर लेटने की आदत पड़ गयी है...लेकिन जव कभी मैं सोचती हूँ कि अगर इस तरह से मुझे थोड़े-से दिन चुपचाप लेटना पड़े तो मैं जरूर पागल हो जाऊँ। चार-पाँच दिन तक तू विलकुल ठीक रहता है और फिर वुख़ार चढ़ जाता है, आखिर यह कव तक चलेगा...?"

सुन्दर चारपाई पर उठकर वैठ गया था, लाली पहले उसका हाथ पकड़कर झुग्गी के अन्दर ले गयी और फिर उसकी चारपाई उठाने वाहर

आयी। हवा हलकी-हलकी चलने लगी थी, जिससे पास ही लगे पेड़ों के पत्ते खड़खड़ाने का स्वर पैदा कर रहे थे। लाली के मन में सुन्दर की बीमारी का ध्यान फिर घूमने लगा था, उसकी बाँहें कितनी सूख गयी थीं, जब कभी वह आधी बाँहों की कमीज़ पहनता था तो उसमें उसकी बाँहें ऐसी झूलती थीं मानो दो बेजान लकड़ियाँ हों। उसकी आँखों में मानो रोशनी नहीं थी, उसकी छाती पहले से ही पिचकी हुई थी और अब तो बिलकुल ही समतल हो गयी थी। और उसके मास्टर जी कहते थे कि वह जमात में सबसे तेज़ है और दसवीं में अवश्य ही उसको वज़ीफ़ा मिल जायेगा। वह सब झूठ था, जो बात वास्तविकता का रूप नहीं धरती उसमें सत्यता का अंश नहीं होता। लाली की आँखें भर आयीं, उसका मन चीख उठने को करा...तभी सुन्दर ने अन्दर से चारपाई लाने की आवाज़ लगायी। लाली मानो सोते से जग पड़ी हो।

नानकचन्द घर लौटे तो होंठों पर थोड़ी-सी मुसकराहट अपने साथ लाये थे। सुन्दर की तबीयत के विषय में वह पूछते नहीं थे, क्योंकि रोज़-रोज़ पूछना उन्हें अरुचिकर लगता था। सच मायनों में तो उन्हें सुन्दर की बीमारी पर विश्वास ही नहीं था, अगर वह अकेले सुन्दर के साथ होते तो अवश्य ही उसका हाथ पकड़कर उसे कहीं काम करने भेज देते...लेटे-लेटे तो भला-चंगा आदमी भी बीमार पड़ जाता है। जब कभी सुभागी सुन्दर की बीमारी के विषय में उनसे बात करती थी तो या तो चारपाई पर लेटे-लेटे उन्हें नींद आ जाती थी, या वह किसी अन्य विषय पर सोचने लग जाते थे...।

कपड़े उतारते हुए उन्होंने सुभागी की ओर देखकर कहा, "आज शंभूदयाल जी मिले थे। तुम जानती हो न शंभूदयाल जी को?"

"वही न, जिनके दो सिनेमा रावलपिंडी में थे?"

"हाँ-हाँ वही, यहाँ पर उन्होंने अपना एक छापाखाना पहाड़गंज में खोल रखा है। कहते थे कि रात-दिन खोले रहने पर भी काम पूरा नहीं कर पाते...इन चार-पाँच सालों में काफ़ी कमा लिया है, पटेलनगर में अपना मकान भी बनवा रहे हैं।"

"जिनके पास माया होती है भगवान उन्हें ही और भी देते हैं...क़िस्मत

का स्वभाव भी बहुत नरम है, वह बड़ा चाहते हैं सुखदा को। दो महीने पहले उसके लिए एक हाथ की घड़ी ख़रीद कर लाये थे। बहुत क़िस्मत वाली है, नहीं तो मेरी मौसी के पास तो दो वक़्त की रोटी भी मुश्किल से जुटती थी...।" कौशल्या मानो मशीन की तरह बोल रही थी। लाली और सुन्दर की उदासीनता देखकर थोड़ी देर बाद वह झुग्गी के भीतर चली गयी।

लाली एकाएक ठहाका लगाकर हँसी जिससे सुन्दर ने चौंककर उसकी ओर देखा, लेकिन उसके हँसने का कारण पूछने की उसमें उत्सुकता नहीं थी।

लाली स्वयं ही बोली, "भाभी कितना झूठ बोलती है ! अभी परसों ही कह रही थी कि सुखदा अपनी माँ के पास फ़िरोज़पुर गयी है, एक ही दिन में क्या वह लौट भी आयी ? भाभी शायद भूल गयी थी कि उन्होंने मुझे यह बात बतायी थी, नहीं तो वह कोई दूसरा बहाना बना लेतीं...और मुझसे कुछ भी कहने की भला क्या ज़रूरत थी ?"

"लाली, मेरी चारपाई अन्दर बिछा दे, मुझे सरदी-सी लग रही है।" सुन्दर बोला।

लाली के दिमाग़ से क्षण-भर में कौशल्या का विचार भाग गया। उसने गम्भीर भाव से सुन्दर के चेहरे की ओर देखा, "सरदी लग रही है ? तो क्या आज रात को फिर बुख़ार चढ़ेगा ? लेकिन वैद्यजी ने तो दस दिन पहले कहा था कि अब बुखार फिर कभी नहीं चढ़ेगा...।"

इस बार सुन्दर हँसा, लेकिन उसकी हँसी में आवाज़ नहीं थी। "तू वैद्यजी पर विश्वास करती है, लाली ? वह झूठी दिलासा देना जानते हैं और उसके पैसे लेते हैं...बस, इससे ज़्यादा और कुछ नहीं जानते।"

"हूँ...तुझे चारपाई पर लेटने की आदत पड़ गयी है...लेकिन जब कभी मैं सोचती हूँ कि अगर इस तरह से मुझे थोड़े-से दिन चुपचाप लेटना पड़े तो मैं ज़रूर पागल हो जाऊँ। चार-पांच दिन तक तू बि[illegible]
रहता है और फिर बुख़ार चढ़ जाता है, आखिर यह कब तक[illegible]

सुन्दर चारपाई पर उठकर बैठ गया था, लाली प[illegible]
पकड़कर झुग्गी के अन्दर ले गयी और फिर उसकी च[illegible]

आयी। हवा हलकी-हलकी चलने लगी थी, जिससे पास ही लगे पेड़ों के पत्ते खड़खड़ाने का स्वर पैदा कर रहे थे। लाली के मन में सुन्दर की बीमारी का ध्यान फिर घूमने लगा था, उसकी बाँहें कितनी सूख गयी थीं, जब कभी वह आधी बाँहों की कमीज पहनता था तो उसमें उसकी बाँहें ऐसी झूलती थीं मानो दो बेजान लकड़ियाँ हों। उसकी आँखों में मानो रोशनी नहीं थी, उसकी छाती पहले से ही पिचकी हुई थी और अब तो बिलकुल ही समतल हो गयी थी। और उसके मास्टर जी कहते थे कि वह जमात में सबसे तेज है और दसवीं में अवश्य ही उसको वजीफ़ा मिल जायेगा। वह सब झूठ था, जो बात वास्तविकता का रूप नहीं धरती उसमें सत्यता का अंश नहीं होता। लाली की आँखें भर आयी, उसका मन चीख उठने को करा.. तभी सुन्दर ने अन्दर से चारपाई लाने की आवाज़ लगायी। लाली मानो सोते से जग पड़ी हो।

नानकचन्द घर लौटे तो होठों पर थोड़ी-सी मुसकराहट अपने साथ लाये थे। सुन्दर की तबीयत के विषय में वह पूछते नहीं थे, क्योंकि रोज़-रोज़ पूछना उन्हें अरुचिकर लगता था। सच मायनों में तो उन्हें सुन्दर की बीमारी पर विश्वास ही नहीं था, अगर वह अकेले सुन्दर के साथ होते तो अवश्य ही उसका हाथ पकड़कर उसे कहीं काम करने भेज देते...लेटे-लेटे तो भला-चंगा आदमी भी बीमार पड़ जाता है। जब कभी सुभागी सुन्दर की बीमारी के विषय में उनसे बात करती थी तो या तो चारपाई पर लेटे-लेटे उन्हें नींद आ जाती थी, या वह किसी अन्य विषय पर सोचने लग जाते थे...।

कपड़े उतारते हुए उन्होंने सुभागी की ओर देखकर कहा, "आज शम्भूदयाल जी मिले थे। तुम जानती हो न शंभूदयाल जी को?"

"वही न, जिनके दो सिनेमा रावलपिंडी में थे?"

"हाँ-हाँ वही, यहाँ पर उन्होंने अपना एक छापाखाना पहाड़गंज में खोल रखा है। कहते थे कि रात-दिन खोले रहने पर भी काम पूरा नहीं कर पाते...इन चार-पाँच सालों में काफ़ी कमा लिया है, पटेलनगर में अपना मकान भी बनवा रहे हैं।"

"जिनके पास माया होती है भगवान उन्हें ही और भी देते हैं...क़िस्मत

भी उनका साथ देती है।"

लेकिन सुभागी की बात नानकचन्द ने सुनी ही नहीं, "मैंने सुन्दर की चर्चा उनसे की थी, यह भी बताया था कि आठवीं तक अँग्रेजी भी पढ़ा है। उन्होंने वचन दिया है कि सुन्दर को वह अपने प्रेस में किसी काम पर लगा देंगे, 60-65 तक तनख़्वाह भी शायद दे दें...।"

सुभागी थोड़ी देर कुछ नहीं बोली। उसने एक बार चारपाई पर सिकुड़े हुए सुन्दर की ओर देखा, जिसके सर्दी के कारण दाँत बज रहे थे, उसके सर्दी लगने पर लाली ने उसके ऊपर मैले कपड़े आदि तक डाल दिये थे। सुभागी ने धीमे स्वर में कहा, "आज फिर सुन्दर को बुख़ार चढ़ आया है। पहले वह ठीक हो जाये तो नौकरी का भी कहीं-न-कहीं बंदोबस्त हो ही जायेगा...।"

नानकचन्द के चेहरे की सारी हँसी मानो उड़ गयी। उनका चेहरा क्रोध और खीझ से तमतमा उठा और उसे दवाने में मानो वह अपनी पूरी कोशिश कर रहे थे। थोड़ी देर तक चुप रहने के पश्चात वे बोले, "यह तो हिम्मत ही हार बैठा है, लड़कों को बुख़ार भी आता है, बड़ी-बड़ी बीमारियाँ भी घेरती हैं और जब वे उठकर खेलने लगते हैं तो सारी बीमारी हवा हो जाती है। दो-चार दिन में फिर तगड़े हो जाते हैं। सुन्दर में तो बीमारी से पहले भी कोई फुर्ती नहीं थी। जब स्कूल में...।"

सुभागी ने बात काटते हुए तनिक तीखे स्वर में कहा, "वह स्कूल में कैसे अव्वल रहता था...तुमने कभी अपने लड़कों की बड़ाई नहीं की, कभी उन्हें प्यार नहीं किया...हमेशा वे तुम्हारी आँखों का काँटा बने रहे।" सुभागी का गला रुँध रहा था, "एक तो घर छोड़कर चला गया, मैं दूसरे को इस तरह अपने हाथों से नहीं खोऊँगी, आख़िर मेरे क्रियाकर्म में तो यही काम आयेंगे।"

नानकचन्द अपने विषय में इतना बड़ा उलाहना सुनकर क्षण-भर के लिए तो चौंक पड़े, फिर उन्हें सुभागी और सुन्दर पर क्रोध आया, परन्तु वह कुछ बोले नहीं। झुग्गी के भीतर सन्नाटा था; केवल चूल्हे में लकड़ियों की चटाख-पटाख हो रही थी और जब वे चुप हो जातीं तो सुन्दर के दाँत बजने का स्वर फैल जाता था। झुग्गी की छत में दो लकड़ियों के बीच में

जो स्थान ख़ाली था उसमें से आकाश पर चमकते चाँद की थोड़ी-सी रोशनी अन्दर आकर फ़र्श पर पड रही थी। देबू सुन्दर की चारपाई के पास ही एक कोने में अधलेटा पडा था।

सुन्दर के बड़बड़ाने पर लाली ने कंबल के भीतर सुन्दर के माथे पर हाथ रखा तो देखा, वह जल रहा था। उसने अपनी बात किसी विशेष व्यक्ति को न सुनाते हुए कहा, "आज सुन्दर को बहुत तेज बुख़ार मालूम देता है, उसकी सर्दी अभी तक गयी नही...।"

खाना खाकर सब सो गये। सुभागी कुछ देर तक धीमे स्वर में— 'मेरी विनती सुनो नन्ददुलारे' का भजन गाती रही। आधा भजन गाते-गाते ही कब उसकी आँख लग गयी, इस बात का उसे पता नही चला। लाली की आँखो मे नीद नही थी। उसे प्रतीत हो रहा था, मानो अपनी सारी जिंदगी वह अब तक सोती रही और अब उसकी आँख बन्द होने से इनकार कर रही थी।

झुग्गी का आधा दरवाजा खुला था, जिसमे से कभी-कभी लाली बाहर की ओर देख लेती थी। हलकी-हलकी चाँदनी मे कुछ पेड़, कुछ चट्टानें और कुछ झाडियाँ उसे दिखायी दे रही थी, परन्तु स्पष्ट कुछ भी नही था, मानो वे सब एक धुंध या कोहरे की छाया मे डूबे हुए हो। भाँति-भाँति के विचार उसके मन में आने लगे. .अपने अतीत की स्मृतियाँ जो इतने वर्ष बीत जाने पर भी आज इतनी ही ताज़ी हैं मानो वे सब कल की बातें हो। जब उनके बाप की फ़र्निचर की दुकान थी, खाता-पीता अच्छा घर था, चार कमरों का साफ़-सुथरा मकान था। उसे अपने बचपन के दिन याद आये। हुकम, देबू, और लाली. .सुन्दर तब बहुत छोटा था, हमेशा माँ के पास ही रहता था। बड़े होने पर भी कभी वह उन लोगो के साथ अच्छी तरह मिल-जुल नही पाया था।

वे तीनों खेला करते थे, झगड़ा किया करते थे, माँ से शिकायतें करते थे और रात को नानकचन्द के डर से चुपचाप किताबें लेकर बैठ जाते थे। जब हुकम और देबू की स्कूल की छुट्टी होती थी तो उसे बहुत ख़ुशी होती थी, क्योंकि सारा दिन खेलने का प्रोग्राम बनता था ..सर्दियों में वे अँगीठी के चारों तरफ़ बैठकर कहानियाँ सुनाया करते थे, हुकम को भूतो की

वहुत-सी कहानियाँ याद थीं, जिन्हें सुनते वक़्त उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे और रात को वह माँ से लिपट कर सोया करती थी, कभी-कभी भूतों के स्वप्न भी उसे आते थे। लाली स्कूल नहीं जाती थी, घर पर ही पड़ोस के पंडितजी उसे हिन्दी, हिसाव पढ़ाने आते थे। हुकम और देवू पंडितजी की हँसी उड़ाते थे, लेकिन लाली मन-ही-मन उनसे घृणा करने पर भी दोनों भाइयों के सामने उनका पक्ष लिया करती थी। एक वार हुकम ने पंडितजी के थैले में मरी हुई चुहिया डाल दी थी, लाली को मालूम था और न जाने क्या सोचकर अपने वायदे को तोड़कर उसने पंडितजी को वतला दिया था कि यह हुकम की शैतानी है, फिर पंडितजी ने नानकचन्द से शिकायत कर दी थी और उन्होंने हुकम को पीटा था। हुकम के पिटने पर लाली को पश्चाताप हुआ था कि उसने क्यों वतलाया ! एक वार मामा की शादी में माँ उन चारों को लाहौर ले गयी थी, लाली ने पहले-पहल लाहौर देखा था, उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, वह छोटे मामा के साथ वाज़ार जाती थी और सजी हुई दूकानों को देखकर उसकी आँखें खुली-की-खुली रह जाती थीं। नानी ने उन सब भाई-वहनों को व्याह के अवसर पर एक-एक उपहार दिया था, हुकम ने मुंह से वजाने का एक वाजा ख़रीदा, देवू ने चाभी वाली एक मोटर और वह तय ही नहीं कर सकी कि वह क्या ख़रीदे, क्योंकि चीज़ें इतनी ढेर-सी थीं। फिर वड़ी मुश्किल के वाद उसने सलमे-सितारों नाली एक जूती खरीदी थी। उसकी पसन्द देखकर हुकम और देवू ने उसका वहुत मज़ाक वनाया था और वह उस रात को खूव रोयी थी...उसे रोते देखकर सब घर वाले वहुत हँसे थे। नानी उन चारों को वहुत प्यार करती थी और अपनी वेटी के सौभाग्य की सब संवंधियों से चर्चा किया करती थी। उसे याद था कि मामा की शादी के वाद लाहौर छोड़ते समय वह कितना रोयी थी...तव नानी और मामा ने माँ से क था कि वे कुछ दिनों के लिए उसे और छोड़ जायें, लेकिन वह राज़ी न हुई...उसे फिर लाहौर भेजने का वायदा किया था। लेकिन वह फिर क नानी के पास नहीं गयी...स्मृतियों के धागे वढ़ते हुए उलझते गये लाली वास्तविकता की दुनिया से दूर...वहुत दूर होती गयी।
उसे दुल्हिन वनने का वहुत शौक़ था, क्योंकि पड़ोस या रिश्तेदारों में

के अवसर पर जब कभी वह वहाँ जाती थी तब हमेशा दुल्हिन को गहनों और अच्छे-अच्छे कपड़ो मे लदे उसने देखा था और वह सोचती थी कि दुल्हिन बनने पर वह भी इस प्रकार सजे-बनेगी, उसके घर भी बाजे बजेंगे और ढोलक पर गीत गाये जायेंगे। जब कभी कोई पड़ोसिन पूछती कि उसका ब्याह कैसे होगा तो वह चुनरी का घूंघट काढ़कर अपना चेहरा छिपा लेती थी और पड़ोसिनें हँस पडती थी और उनकी हँसी में लाली भी खुश हो जाती थी.. उस बात को गुजरे एक अरसा बीत गया। लेकिन अब उस तरह की दुल्हिन बनने का चाव खत्म हो गया, लेकिन एक पुरुष के साथ अलग घर बसाने का आकर्षण तो है ही जो हर एक लड़की मे होता है। अपने भविष्य के सुनहरे सपने उसने कभी नही देखे, लेकिन भविष्य के लिए वह सोचती नही है ऐसी बात तो नही थी।

अपने विचारो मे लाली इतना खोयी हुई थी कि सुन्दर के लगातार बड़बड़ाने की आवाज उसने नही सुनी। परन्तु जब हलकी-सी चीख उसके मुंह से निकली तो लाली अनायास ही चौक पडी। उसने सुन्दर के चेहरे से कम्बल उठाकर एक बार उसके माथे को छुआ और फिर झुककर धीरे से पूछा, "क्या है, सुन्दर ? क्या अब भी सर्दी लग रही है ..?"

"दुनिया गोल है, मास्टरजी.. जब-जब सूरज या चाँद पर ग्रहण पड़ता है तो जमीन की छाया गोल बनकर पडती है . क्या मुझे वजीफा मिल सकता है, मास्टरजी. .हाँ-हाँ, मेरे बाबूजी के पास मेरे पढ़ाने के लिए पैसे नहीं हैं, मैं...अब स्कूल छोड़ दूंगा, कही नौकरी कर लूंगा, मेरा पढ़ना नहीं बेकार है, मास्टरजी...!"

लाली ठिठक गयी...उसने सुन्दर के माथे से चुपचाप हाथ हटा लिया। शायद इस प्रकार बड़बड़ाकर सुन्दर का जी हलका हो जायेगा और जो बात वह होश से कभी नहीं कहता था, उन्हें बेहोशी की हालत में वह बतायेगा। लाली भी जानना चाहती थी कि सुन्दर को क्या दुख है और वह क्या सोचता है ? सुन्दर का बड़बड़ाना जारी था, मानो [illegible] बोल रहा हो...टूटा-फूटा रेकॅर्ड, जिसके वाक्य पूरे नहीं हैं [illegible] क्रम से नही आते—"लेकिन मैं पढना चाहता हूँ, मास्टरजी... रह सकता...मुझसे चाय की दुकान पर नहीं बैठा जायेगा

मुझे नफ़रत है, अगर...अगर मेरा बस चलता तो मैं उसका ख़ून कर देता...अब मैं अच्छा नहीं हो सकता...मेरा सारा बदन टूटा करता है...मेरा सर घूमता रहता है...मैं खड़ा नहीं हो सकता...मुझसे बैठा नहीं जाता...मैं अपनी सारी किताबें जला दूंगा। बाबूजी को मेरा घर पर भी पढ़ना अच्छा नहीं लगता, वह मुझे कामचोर समझते हैं...हे भगवान...अब उठा ले...!"

अचानक लाली के मुंह से बड़े ज़ोर की एक चीख निकली, जिसका उसे पता नहीं लग सका। उसकी चीख से सुन्दर का बड़बड़ाना बन्द हो गया और झुग्गी में सोये सब लोग जाग उठे और "क्या हुआ...क्या है लाली, तू चीखी क्यों?" प्रश्न पूछने लगे। लाली क्षण-भर तक चुप रही और फिर उसने सारी घटना को महसूस किया। वह अधीर स्वर में बोली, "सुन्दर बहुत बीमार है, तू वैद्यजी को बुला ला, देवू।"

देवू अपने बिछौने पर लेटा हुआ वहीं से लाली की ओर देख रहा था।

नानकचन्द बोले, "तुम सब घर वालों को हो क्या गया है? ज़रा बुख़ार चढ़ गया तो आधी रात को वैद्यजी को बुलाओ...तुम्हीं लोगों ने सुन्दर की बीमारी को दुगना कर दिया है..."

सुभागी ध्यान से लाली की ओर देख रही थी, उसे मालूम था कि सारे घर में लाली को सुन्दर की बीमारी की सबसे अधिक चिंता है। वह शान्त स्वर में बोली,"घबराने की कोई बात नहीं है, लाली। इस तरह का बुख़ार तो सुन्दर को कितनी बार चढ़ा है, सवेरे तक न उतरा तो देवू वैद्यजी को बुला लायेगा।"

लाली रोने लगी। झुग्गी में अँधेरा होने के कारण किसी को उसके आँसू दिखायी नहीं दिये।

नानकचन्द ने तनिक सख़्त और सर्दीले स्वर में कहा, "अब सो जाओ। रात को तो चैन से सोने दिया करो, किसी को बुख़ार है तो कोई चीख़ता है...हैं...!" यह कहकर वह फिर लेट गये और कम्बल मुंह पर डाल लिया।

सुभागी लाली को अपने बिछौने पर ले आयी और लाली ने सुभागी से लिपटकर अपने दाँत भींच लिये, आवाज़ निकलने पर उसे नानकचन्द के

डाँटने का भय था।

सुबह सुन्दर की हालत काफ़ी बिगड़ गयी। उसके होंठ हिल रहे थे, लेकिन उनमें से कोई आवाज़ नहीं निकल रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें खुली थीं, लेकिन ऐसा प्रतीत होता था मानो उसे कुछ दिखायी न दे रहा हो। पड़ोस की झुग्गी में रहने वाले शामलाल को थोड़ी-बहुत नब्ज़ देखनी आती थी सो लाली उसे बुला लायी; उसने नाड़ी देखकर कहा कि यह निश्चित रूप से नहीं चल रही है, लेकिन वैद्यजी को बुला लिया जाये। नानकचन्द ने सब घर वालों को सुन्दर की चारपाई के आस-पास खड़े देखा तो वह चुपचाप बिना किसी से कहे-सुने जल्दी ही अपनी दुकान खोलने के लिए चले गये। अपने घर वालों की कोई भी बात उन्हें पसन्द नहीं आती थी।

देवू वैद्यजी को गुरुद्वारा रोड से बुला लाया। सुन्दर का निरीक्षण वह काफ़ी देर तक करते रहे, कभी उसकी नाड़ी देखते, कभी उसके पेट को देखते और कभी उसकी छाती की हड्डी को बजाकर देखते। फिर ऐनक उतारकर एक नज़र सब घर वालों पर डालते हुए उन्होंने इस ढँग से बोलना आरम्भ किया मानो जज किसी मुकदमे का फ़ैसला सुना रहा हो—"बीमारी ने शायद कोई नया रुख़ अख़्तियार कर लिया है, साँस ठीक से नहीं आ रही है लेकिन घबराने की कोई बात नहीं है, मैं अभी देवू के हाथ दवा भिजवा दूंगा। मेरी दवाई ने मरते हुए लोगों को मौत के मुँह से बचाया है और बाकी तो सब उसके हाथ मे है। इसान के किये से क्या होता है?"

आसमान पर बादल छाये हुए थे और सूरज उनकी घनी चादर के भीतर छिप गया था। बस्ती में अन्य दिनों की भाँति ही प्रात काल से ज़िंदगी के निशान उभरने आरम्भ हो गये थे। स्त्रियाँ, और जिन घरो मे स्त्रियाँ नहीं थी वहाँ के मर्द बालटी, बटलोई, पीपे लिये नल की ओर पानी भरने के लिए चले जा रहे थे और परस्पर बातें करने का तो कोई अन्त ही नहीं था। कारख़ाना रात-भर तक ख़ामोश रहने के उपरान्त फिर अपने नियमित स्वर मे चिल्लाने लगा था। लाली, जो प्रात काल से ही सुन्दर के सिरहाने बैठी थी, वहाँ से उठी ही नहीं। सुभागी ने एक गिलास चाय का

और रात की रखी एक रोटी उसे दी तो लाली ने इनकार कर दिया। सुन्दर चुप था, विलकुल चुप। उसने वैद्यजी की दवा खाकर अपनी आँखें वन्द कर लीं। सुवह उसके चेहरे पर जो थकान और असीम पीड़ा के चिह्न थे वे अव वहाँ नहीं थे, मानो वड़ा दुर्गम रास्ता पार करके कोई व्यक्ति शांति की आहें भरता हो, जिनमें मौत की कठिनाइयों की केवल स्मृति ही रहती है। सुन्दर सो गया।

सुभागी पास ही के देवी के मंदिर में पूजा करने चली गयी। कौशल्या नल पर जो पानी भरने गयी सो दो घंटों से पहले नहीं लौटी। लाली ने देवू से कहा कि वह आज काम पर नहीं जाये। और देवू मन-ही-मन लाली की आशंका पर हँसा था, लेकिन लाली का कहना वह नहीं टाल सका। वचनसिंह से कहकर वह फिर वापस लौटकर झुग्गी के दरवाज़े पर आकर वैठ गया और वीड़ी के कश खींचने लगा।

उस रात को सुन्दर चल वसा। उसने वहुत देर तक घर वालों को मृत्यु और जीवन की उधेड़वुन में डाले नहीं रखा। वैद्यजी के आने से पहले ही उसने अपनी आख़िरी साँस ली। नानकचन्द खाना खाकर शामलाल की झुग्गी में वैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे, तभी सुभागी के ज़ोर-ज़ोर से रोने की आवाज़ सुनकर वह उठ खड़े हुए, परन्तु स्थिति इतनी ख़तरनाक हो गयी है इस वात पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। चलते समय शामलाल से वोले, "मेरे घर वाले पागल हो गये हैं, जव उन्हें और कोई काम नहीं होता तो दूसरों की मौत की घंटी वजाने लगते हैं...।" अन्त समय तक उन्हें विश्वास नहीं था कि सुन्दर इस प्रकार मर सकता है। जिस धागे में उसका जीवन झूल रहा था उसके इतना कच्चे होने की आशंका उन्हें नहीं थी, और अचानक सुन्दर की मृत्यु से उन्हें मानो काठ मार गया, वह चुपचाप सुन्दर के मृत चेहरे की ओर देखते रहे।

सुभागी की चीखें सारी वस्ती में रात के सन्नाटे में एक भयानक दृश्य पैदा कर रही थीं। वह सुन्दर से लिपट-लिपटकर रो रही थी, उसके वाल खुल गये थे, जिन्होंने सुभागी के चेहरे को और भी विकृत वना दिया था। लाली और देवू—दोनों चुप थे। देवू चारपाई के पास ही खड़ा था। लेकिन लाली सारा दिन सुन्दर के सिरहाने वैठने के पश्चात अव एक कोने में

दुबकी हुई बैठी थी, उसके बाल बिखरे हुए थे और आँखों के नीचे काले गड्ढे पड़ गये थे। कितने ही पड़ोसी आये और अपनी सहानुभूति दिखाने लगे, जिन गुणों को किसी ने सुन्दर मे नही देखा था, उनका वर्णन करने लगे और फिर 'परमात्मा की मर्जी', 'किस्मत का खेल' आदि वाक्यों से वे परिवार वालों को दिलासा भी देते जा रहे थे।

सुभागी जो एक बार लेटी तो उसे नींद ने आ घेर लिया। परिवार के अन्य सदस्य भी या तो पूर्ण रूप से सो गये थे, या अर्द्धजाग्रत अवस्था मे थे। देवू कुछ देर तक पड़ोसियों की भीड़ से पीछा छुड़ाने के लिए बाहर चाँदनी में बस्ती के चक्कर लगाता रहा, फिर लौटकर अपने बिछौने पर लेट रहा। लाली देर तक बैठी रही, किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। काफ़ी रात बीत जाने के बाद वह अचानक अपनी जगह से उठ खड़ी हुई और कुछ देर तक सुन्दर के ढँके शरीर की ओर देखती रही, फिर उसने धीरे से चादर उठायी और सुन्दर के मुँह पर अपना सिर रखकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी हिचकियाँ बँध गयीं।

शभूदयाल का 'नया हिंदुस्तान प्रेस' पहाड़गज में पुल की ओर जाने वाली सड़क से थोड़ा पहले था। बगल में लड़कियों का एक स्कूल था जिसका प्रबन्ध एक मिशिनरी संस्था के हाथों में था। दूसरी ओर कागज, स्टेशनरी आदि की दुकानें थीं। सड़क के पार 'टिम्बर मर्चेन्टस' थे, जिनके बड़े-बड़े साइनबोर्ड उनकी दुकानों की वास्तविकता को छिपाने का विफल प्रयास किया करते थे। सड़क पर सुबह से लेकर रात तक मोटरों, बसों, ताँगों और बैलगाड़ियों का ताँता लगा रहता था, कभी-कभी तो किसी लॉरी के कल-पुर्जों में कोई ख़राबी हो जाने पर उसके रुक जाने के कारण पीछे दूर-दूर तक ट्रैफिक बन्द हो जाता था और मोटरों के हॉर्न और ताँगे वालों की आवाजें सुनायी देने लगती थीं। दिन में रेलगाड़ियों के आने-जाने की आवाज़ और इंजनों की सीटियाँ भी सुनायी देती थीं। थोड़ी दूर आगे सड़क से लेकर ऊपर प्रेस तक की ज़मीन पर घास-फूस, चीथड़ों आदि की 20-25 झोप-

ड़ियाँ वनी हुई थीं जिनमें मजदूर, भिखारी आदि अपने परिवारों सहित रहा करते थे। वारिश पड़ने पर सड़क पर तालाव से वन जाते थे और किसी मोटर या लॉरी के गुज़रने पर उसके छींटे दूर-दूर तक उड़ते थे।

देवू इसी कारखाने में काम करने लगा। सुन्दर की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात उसे अचानक याद आया कि एक दिन नानकचन्द सुभागी से कह रहे थे कि सुन्दर को शंभूदयाल अपने प्रेस में नौकर रख लेंगे और 60 या 65 रुपये वेतन दे दिया करेंगे...जव सुन्दर वहाँ काम कर सकता था तो उसे भी वह नौकरी मिल सकती थी, वह सुन्दर से वड़ा था और काम भी वह ज़्यादा कर सकता था, उसे काम करने की आदत भी थी। उसी दिन शाम को उसने नानकचन्द से इस विषय में वात की। वह चुपचाप देवू की वात सुनते रहे, न कुछ वोले और न ही उत्साह दिखलाया। देवू क्रोधित होकर उठा, जव नानकचन्द इतने उदासीन हैं तो शायद ही वह उसे यह नौकरी दिलवा सकेंगे और वह विना अधिक कहे-सुने वहाँ से उठ आया। लेकिन तीन-चार दिन वाद दुकान वन्द करके लौटने पर उन्होंने देवू को 'नया हिंदुस्तान प्रेस' का पता ठीक से वता दिया और कहा कि वह अगले दिन सुवह दस वजे प्रेस में जाकर शंभूदयाल से मिल ले। तव भी देवू ने उनके चेहरे पर कोई खुशी या उत्सुकता नहीं देखी।

देवू को सुवह आठ वजे से लेकर शाम के छः वजे तक प्रेस में काम करना पड़ता था। शुरू-शुरू में उसे कितावों और अख़वारों के वरक़े मोड़ने का काम मिला। प्रेस के पीछे छोटे-से कमरे में वह अन्य लोगों के साथ दरी पर वैठ जाता और वे आपस में वातें करते हुए वड़ी फुर्ती के साथ काग़ज़ों को मोड़ते जाते, कभी-कभी कोई वहुत थक जाने के पश्चात एक वीड़ी सुलगा लेता और अपनी कमर सीधी करता। सड़क पर वैठकर साइकिलों का काम करते-करते इस प्रकार खुले आम काम करने की जो शरम-सी होती है वह उसमें अव शेप नहीं वची थी और अव अँधेरे कमरे में वाहर की दुनिया से दूर यह काम करना पहले-पहल उसे तनिक नया-सा लगा, आगे मशीनों की नियमित खटाखट का स्वर गूंजता रहता था। एक वजे खाने की छुट्टी आधा घंटे के लिए होती थी, जव प्रेस में काम करने वाले 12-15 व्यक्ति प्रेस के आगे वरामदे में या पीछे वाले दालान में अपनी-

अपनी टोलियाँ बनाकर बैठ जाते और कपड़े या कटोरदान में बन्द सुबह की बनी रोटियाँ, दाल-सब्ज़ी वगैरह निकालकर खाते और फिर तबाकू पीने वाले लोग बीड़ियाँ और सिगरेटें सुलगा लेते।

पिछले बरामदे में खड़े होकर स्कूल का खेलने का मैदान साफ दिखायी देता था और एक बजे उनकी भी खाने की छुट्टी होती थी, तब प्रेस में कुछ कम-उम्र वाले मज़दूर बरामदे में खड़े होकर स्कूल के बाग की ओर ध्यान से देखा करते थे और लड़कियों के संबंध में आपस में हँसी-मज़ाक किया करते थे और फब्तियाँ कसा करते थे। उनके लिए यह समय सबसे अधिक मन-बहलाव का था और इसकी बड़ी उत्सुकता से बाट जोहा करते थे।

आपस की बातचीत घर के बच्चों, उनकी बीमारियों, नयी शादियों से लेकर सिनेमा, सरकस और विलायत की खबरों तक होती थी। कुछ लोगों को अख़बार पढ़ने का शौक था और वे शाम को काम से लौटने पर अपने पड़ोसी या अख़बार वाले की दुकान पर ही बैठकर अख़बार पढ़ा करते थे और दूसरों को अपना ज्ञान जतलाने के लिए अगले दिन दूसरे लोगों से उन समाचारों की चर्चा किया करते थे।

जल्दी ही देवू का परिचय प्रेस में काम करने वाले लगभग सभी लोगों से हो गया, परन्तु न तो देवू इतना पढ़ा-लिखा था, न ही उसके शारीरिक गठन में कोई विशेष आकर्षण था और न ही उसकी ज़िंदगी के अनुभव इतने सनसनीदार थे कि कोई व्यक्ति उसके व्यक्तित्व से विशेष रूप से प्रभावित होता। वह एक साधारण व्यक्ति था, जिसमें दूसरों को दिलचस्पी नहीं होती। उसे न वे चुटकुले आते थे जिससे दूसरों को हँसाता; न ही उसे वे सनसनीदार रोमांचकारी घटनाएँ मालूम थीं जिन्हें सुनने की दूसरों को उत्सुकता होती। लोग उसका मुसकराकर स्वागत करते थे और बदले में वह भी हँस देता था, खाने की छुट्टी में वह दूसरों की बातें सुना करता था और कभी-कभी कोई छोटा-सा वाक्य भी कह देता था जिसकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता था।

प्रेस में जाने के दो-तीन दिन बाद नानकचन्द ने दुकान से देवू को नीली धारियों वाली एक कमीज़ और फौज की एक खाकी पैंट ला दी थी। यद्यपि पैंट कमर से काफी खुली हुई थी, परन्तु फिर भी उसे पहनकर

वह बाहर निकला तो हृदय में उसे अपनी पोशाक का ध्यान हो आया, उसे राह चलते ऐसा प्रतीत होने लगा था मानो सड़क पर चलते सब लोग उसकी तरफ़ ध्यान से देख रहे हों। बस्ती के अन्य लोगों से भी बातचीत करते समय वह महसूस करता था कि छोटी-छोटी दुकानों, रोड़ी कूटने के कारख़ाने, रेस्तरां आदि में काम करने वाले—इन सब लोगों की अपेक्षा उसे एक ऐसा सम्मानित पद प्राप्त था जो इन सबसे कहीं ऊँचा है। वह प्रेस में जाने से पूर्व शीशे के सामने खड़े होकर काफ़ी देर तक बालों पर कंघी करता, कमीज़ के कालर को दबाता और पैंट की सिलवटें दूर करता। तैयार होते समय उसकी आँखों के सामने शंभूदयाल का पुत्र रामदयाल घूम जाता था जो अपने बालों में सुगंधित तेल लगाता था, अच्छी तरह से प्रेस किया हुआ सूट और लाल फूलों या किसी स्त्री की शक्ल बनी हुई वाली टाई पहनता था और उसके काले चमचम करते जूतों पर कभी एक क़तरा धूल का नहीं होता था। रामदयाल तीन-चार घंटों से ज्यादा प्रेस में नहीं बैठता था, वह अपने पिता के सामने सिगरेट और पाइप पीता और फिर अपनी छोटी-सी कार में ग़ायब हो जाता था। काग़ज़ मोड़ने वाले कमरे से रामदयाल की मेज़ दिखायी देती थी और जब रामदयाल दफ़तर में होता तो देबू की नजर बार-बार उसकी मेज़ की ओर चली जाती थी। यह बात नहीं कि देबू ने पहले सड़क पर चलते या कारों में बैठे अच्छी पोशाक पहनने वाले पुरुष-स्त्रियों की सराहना न की हो, परन्तु इतने समीप से किसी को देखने का अवसर उसे प्राप्त नहीं हुआ था और अब प्रेस में नौकरी कर लेने के बाद उसकी स्थिति भी बदल गयी थी। 70 रुपये का वेतन उसे 700 रुपये से कम नहीं मालूम पड़ता था, घर में भी उसके प्रति जो उदासीनता थी वह समाप्त हो गयी थी।

प्रेस में काम शुरू करने के बाद तीसरा दिन शायद उसकी स्मृति से कभी दूर नहीं होगा। उस दिन छः बजे अपनी हाज़िरी समाप्त होने के पश्चात बेसिन में हाथ-पैर धोकर उसने धुंधले से शीशे में अपने बाल बनाये और वह सबसे बाद में प्रेस से निकलने लगा। संयोगवश उस दिन शंभूदयाल काम लेने के लिए नयी दिल्ली में किसी प्रकाशक के यहाँ गये हुए थे, जिससे रामदयाल को प्रेस में बैठना पड़ा था। काम कुछ नहीं था और वह

नीली कार्डराय की पतलून और कफ़ लगी सफ़ेद कमीज़ पहने अपनी कुर्सी पर आराम से बैठा किसी साप्ताहिक पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। कभी-कभी वह बाहर की ओर भी झांक लेता था और भीड़ में जब किसी पर निगाह जाकर टिक जाती तो क्षण-भर वह उसी ओर देखता रहता था। सिगरेट उसके होंठों में लगी थी और विलायती क्रीम में सने बाल चमक रहे थे। उसका चेहरा भरा हुआ था और रंग भी साफ़ था, कुछ लोग उसे सुन्दर समझते थे, परन्तु उसकी आंखों में एक ऐसी छाया थी जिससे उसका चेहरा कुछ विकृत-सा लगता था।

देबू को अपने पास से गुज़रते देखकर रामदयाल ने आवाज़ लगायी, "ऐ, सुनो...!" देबू ठिठक गया। "तुमने अभी हाल में ही प्रेस में काम करना शुरू किया है न?"

देबू रामदयाल के इतना समीप खड़े होने के कारण घबरा-सा गया था। जिन कपड़ों को वह बड़े शान से बस्ती के दूसरे लोगों को दिखलाता था, उन्हीं से रामदयाल के सामने उसे लज्जा-सी आने लगी। जिस व्यक्ति को दूर से देखकर वह उसे अपना ही एक आदमी समझने लगा, उसके पास खड़े होकर क्षण-भर के लिए उसके मन में उसके प्रति घृणा उभर आयी। उसने गरदन हिला दी, उसके मुख से आवाज़ नहीं निकली।

रामदयाल उसे देखकर हँसने लगा, जिससे देबू का चेहरा कनपटियों तक लाल हो गया।

"तुम्हारी क्या उम्र है?"

"जी...यही कोई 23 साल की...।" देबू की घबराहट बढ़ गयी थी।

"तुम्हारा नाम?"

"जी...देबू।" उसे अपने नाम से भी घृणा होने लगी थी, उसे अपने मां-बाप पर क्रोध आ रहा था कि उन्होंने उसका ऐसा नाम क्यों रखा? 'रामदयाल' नाम में एक प्रकार का बड़प्पन है, उसे सुनकर कोई उसके बच्चे होने की कल्पना नहीं कर सकता और 'देबू' नाम ऐसा लगता है जैसे स्कूल का कोई बच्चा हो।

"देबू—नाम बहुत अच्छा है। अच्छा देबू, बताओ, तुम्हें प्रेस का काम कैसा लग रहा है?"

"जी, बहुत अच्छा। मैं...मैं धीरे-धीरे काम सीख जाऊँगा, आप फ़िक्र न करें। रोशनलालजी कह रहे थे कि वरक़े मोड़ने मैं सीख गया हूँ और अब थोड़े ही दिनों में तेज़ रफ़्तार के साथ मोड़ने लगूँगा। आप रोशन-लाल जी से पूछ लीजियेगा।" एक भयभीत बनाने वाली आशंका देवू के मन में घर करती जा रही थी। रामदयाल के प्रश्न पूछने पर उसे ऐसा लगा था कि शायद वह उसके काम से संतुष्ट नहीं हैं, तभी स्पष्ट रूप में न कह कर घुमा-फिरा कर वह बातें कह रहे हैं। अन्यथा रामदयाल प्रेस के किसी भी काम करने वाले से कोई बातचीत नहीं करता, उसकी जिम्मे-दारी शंभूदयाल पर थी।

रामदयाल फिर हँसने लगा। उसने सिगरेट को ऐश-ट्रे में बुझा दिया और स्वयं पैरों को फैलाकर सुस्ताने लगा।

"तुम पहले कहाँ काम करते थे, देवू ?"

इस प्रश्न से देवू और भी घबरा गया। वह झूठ बोल देना चाहता था, लेकिन डर से वह नहीं कह सका। शायद नानकचन्द ने शंभूदयाल को बता दिया होगा कि वह पहले कहाँ काम करता था। उसने धीमे स्वर में उत्तर दिया, "जी...ऐसे तो मेरे बाप की दुकान है, वहाँ बैठता था, लेकिन... दो-तीन घंटे और कभी-कभी सारा दिन साइकिल की दुकान पर काम करता था। कमाने के लिए कुछ-न-कुछ तो इंसान को करना ही पड़ता है।"

"हाँ-हाँ, सो तो है ही, कुछ-न-कुछ तो हर एक को करना ही पड़ता है। मैं प्रेस में बैठता हूँ...।" थोड़ी देर चुप रहकर उसने सिगरेट के डिब्बे में से एक और सिगरेट निकाली और अपने होंठों पर लगा ली, "तुम सिगरेट पीते हो, देवू?"

"कभी-कभी पी लेता हूँ...।"

रामदयाल ने एक सिगरेट निकालकर उसकी ओर बढ़ायी।

"नहीं...।" देवू की आश्चर्य में आवाज़ नहीं निकल रही थी, "मेरी तबीयत नहीं है, मैं...मैं बहुत कम पीता हूँ।"

रामदयाल ने हँसते हुए कहा, "अच्छा, अपने पास रख लो, घर जाकर पी लेना।"

देवू ने धीरे-से हाथ बढ़ाकर सिगरेट कमीज की जेब में रख ली। उसका दिल बाँहों उछलने लगा था और जो डर बातचीत के आरंभ में लगा था, वह धीरे-धीरे दूर होता जा रहा था।

बाहर धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ने लगा था। कभी-कभी बाहर मोटरों और लॉरियों के हॉर्न इतने ज़ोर-ज़ोर से बजने लगते थे कि अंदर आवाज सुनना कठिन हो जाता था। जब रामदयाल की नजर किसी दूसरी ओर जाती तो देवू उसको कनखियों से देख लेता था। देवू को उसके कपड़े पसंद आये, उसकी पीली टाई में सफ़ेद फूल अच्छे लगे और उसकी पैंट की क्रीज की उसने सराहना की, परंतु एक-आध बार ध्यान से उसके चेहरे की ओर देखकर उसे जग्गी का चेहरा याद आने लगा जिसे देखकर उसे डर लगने लगता था। उसके सम्मुख मुक्खासिंह का चित्र खिंच गया, जब उसने धीरजसिंह को पीटा था और फिर पीले-पीले गंदे दाँत बाहर निकाल दिये थे, जो मुद्रा उनमें थी वही रामदयाल के चेहरे पर भी दिखायी दी। परंतु जग्गी और मुक्खासिंह से कभी-कभी उसे नफ़रत हो जाती थी, परंतु रामदयाल के विषय में इस प्रकार का कोई विचार उसने जबरदस्ती नहीं आने दिया।

"डैडी कहते थे, देवू, कि तुम लोग भी हमारे ही शहर में रहते थे। वहाँ डैडी के तुम्हारे पिताजी से अच्छे-खासे ताल्लुकात थे। मुझे तो बस गार्डन कॉलिज की याद है जब मैं सेकंड ईयर में पढ़ा करता था...वे दिन शायद कभी भूल नहीं सकूँगा। हाऊ लवली...और अब मैं यहाँ प्रेस में बैठता हूँ। मेरे पास कार है, शाम को गेलार्ड में बैठकर व्हिस्की पीता हूँ अच्छा देवू, तुम कभी 'गेलार्ड' गये हो?" अचानक रामदयाल देवू की ओर देखकर पूछ बैठा।

देवू फिर घबरा गया था। अपनी अज्ञानता का परिचय न देना चाहता था, परंतु 'हाँ' कहकर यदि कोई नयी समस्या सामने आ खड़ी हुई तो फिर उसे सुलझाने में जो कठिनाई पड़ेगी...वह चुप ही रहा।

"गेलार्ड यहाँ का सबसे मशहूर रेस्टोरेंट है, देवू...ओह, डैडी अभी तक नहीं आये...!" अचानक उसने कलाई पर लगी घड़ी की ओर देखते हुए कहा, "मेरा एपांटमेंट है, कभी-कभी तो बस डैडी को मेरा ख़याल ही

नहीं रहता। अच्छा देवू, सामने की अलमारी में से एक सोडे की वोतल और गिलास ले आओ...।"

देवू तत्काल ही अलमारी में से सोडा और गिलास ले आया। रामदयाल ने मेज़ की दराज़ में से एक वोतल निकाली, "तुम थोड़ी व्हिस्की पिओगे, देवू ?"

देवू ने इस वार ज़ोर से गरदन हिला दी, "अच्छा, मुझे देर हो रही है, दयाल साहव...।"

रामदयाल हँसने लगा, "अच्छा, किसी और दिन पिलाऊँगा तुम्हें...।"

जव देवू प्रेस के वाहर निकला तो शाम हो चुकी थी। सड़कों की वत्तियाँ जल गयी थीं। सड़क पर भीड़ भी कम हो गयी थी। पटरियों पर सब्ज़ियाँ, फल और दूसरा सामान वेचने वाले ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर राह चलती भीड़ का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश कर रहे थे। देवू ने अपनी जेव टटोली तो छः आने थे। उसने पास ही के रेस्टोरेंट में वैठकर एक प्याला चाय पीने की सोची। प्रेस की नौकरी से उसका हाथ तनिक खुल गया था और आज तो रामदयाल के साथ वातचीत करके उसके मन में आशा की जो किरन फूटी थी उसके उपलक्ष में वह खुश होना चाहता था।

गरम-गरम चाय पीने के साथ उसकी विचारधारा रामदयाल की ओर ही केंद्रित थी। रामदयाल कभी भी प्रेस में काम करने वालों से इस प्रकार की मैत्रीपूर्ण वातें नहीं करता। उसने दूसरे लोगों से रामदयाल की निंदा ही सुनी थी कि उसके मन में दया लेशमात्र को भी नहीं है। जव कभी वह किसी को सुस्ताते हुए देखता तो ज़ोर-ज़ोर से डाँट देता। एक-आध हलकी गाली भी उसके मुख से निकल जाती थी। एक वार तो उसने एक मज़दूर के तमाचा लगा दिया तो दूसरे लोगों ने शंभूदयाल से इस विषय में शिकायत की। शंभूदयाल ने समझा-वुझाकर उन्हें शांत किया। और वही रामदयाल आज उससे घुल-मिलकर वातें करता रहा। अव जल्दी ही उसकी तरक़्क़ी भी हो जायेगी, परंतु वह किसी से इस विषय में कुछ नहीं कहेगा, वेकार में दूसरे लोग जलेंगे।

जब तक सिगरेट खत्म न हुई तब तक उसे रेस्टोरेंट से उठने का विचार नही आया। यदि सिगरेट का अंत न होता तो उसकी विचार-शृंखला भी कभी न टूटती। रेस्टोरेंट के रेडियो से फिल्मी रिकॉर्ड बड़े तेज स्वर में बज रहे थे, परतु देवू का ध्यान उस ओर नही था।

उस दिन के बाद तो देवू को अपने कपडो, जूतों आदि का विशेष ध्यान रहता। प्रात प्रेस जाने से पूर्व वह अपना बहुत-सा समय हाथ-मुंह धोने में लगा देता था। जिंदगी मे पहली बार ध्यान से उसने अपना चेहरा शीशे में देखा था। नही, उसका चेहरा बदसूरत नही है, यदि वह रामदयाल की भाँति सफ़ेद रेशमी कमीज़, क्रीज वाली गरम पैंट और पालिश किये हुए काले जूते पहन सकता तो अवश्य ही वह रामदयाल से अधिक सुदर दिखायी देने लगता। कपडों से इसान का रग-रूप भी निखर जाता है। जब से उसने नीली धारियों वाली कमीज और पैंट पहननी आरभ की है और ठीक से बायी तरफ़ बालो की 'माँग' निकालनी शुरू की है तब से दो-तीन बार बस्ती के लोग उससे मिलने पर उसकी कायापलट पर आश्चर्य प्रकट करते थे और कहते थे कि वह पहचाना भी नही जाता और वह मन-ही-मन बहुत खुश हुआ था। उसने सोचा था कि अगले महीने अपने वेतन मे से वह अपने लिए कुछ कपड़े बनवा लेगा।

एक दिन शाम के समय प्रेस से लौटकर वह अपनी कमीज पर बटन टाँक रहा था और सीटी बजाता जा रहा था। लाली सुभागी के साथ किसी संबधी के घर गयी हुई थी और कौशल्या चूल्हे के पास बैठी रोटियाँ बना रही थी। देवू कभी कौशल्या के साथ बिना झिझक के नही बोला था। जब हुकम की शादी हुई थी तो देवू की इतनी उम्र थी, जब किसी भी लड़की को अपने सामने देखकर वह घबरा-सा जाता था और शरम से उसके गाल लाल हो जाते थे। ऐसे ही समय कौशल्या उनके घर आयी थी और पहले-पहल तो देवू उसकी छाया से दूर भागा करता था। कौशल्या ने भी देवू के विषय में कोई उत्सुकता नही दिखायी थी। दोनों के रास्ते हमेशा एक-दूसरे से दूर रहे थे और कहीं भी क्षण-भर के लिए उनका मिलना सभव नही हो सका था।

"मुझे भी कोई काम मिल जाये तो मैं भी कर लूं...," कौशल्या ने

रोटी चकले पर बेलते हुए कहा, "इस तरह आखिर गाड़ी कब तक घिसटेगी ? कपड़े फटे जा रहे हैं, उनके लिए माँ से कहती हूँ तो वह कहती हैं कि बाबू से माँग और बाबू से कहती हूँ तो वह कहते हैं कि उन्हें इन बातों से कुछ नहीं लेना-देना है...।"

देवू के हाथ में सुई अचानक रुक गयी। वह कुछ नहीं बोला, पर झुके सिर को ऊपर उठाकर उसने कौशल्या की ओर देखा। उसने सीटी बजानी बंद कर दी थी।

"ज़रा-सी बात कहती हूँ कि माँ मुझे कोसने लगती हैं कि मेरी वजह से उनका लड़का घर छोड़कर चला गया...हूँ...और यहाँ मेरी जो हालत हो रही है सो...सारा दिन लौंडी की तरह काम करवाती हैं तब कहीं जाकर दो वक़्त का खाना नसीब होता है...।"

तभी देवू को झुग्गी के बाहर धीरजसिंह की आवाज़ सुनायी दी। देवू ने कमीज़ को एक ओर रख दिया और बाहर निकल गया।

"कह धीरजसिंह, आज इधर का रास्ता कैसे भूल गया ? क्या दुकान बंद कर आया ?"

बाहर बिछी चारपाई पर दोनों बैठ गये। धीरजसिंह की आवाज़ सुनकर देवू को प्रसन्नता ही हुई थी, क्योंकि कौशल्या की उबा देने वाली बातों से उसे छुटकारा मिल गया था। कभी-कभी कौशल्या किसी अन्य व्यक्ति को अपने समीप न पाकर देवू से इस प्रकार की बातें करती थी। देवू से उनका जवाब पाने के लिए नहीं, वरन यह उसका अपना ही ज़ोर से सोचना होता था। कभी-कभी तो कौशल्या की बातें उसे चौंका देती थीं यद्यपि वह जानता था कि कौशल्या जो कुछ भी कहती है उनमें गंभीरता नहीं होती। कह चुकने के बाद वह उन्हें भूल जाया करती है।

धीरजसिंह चुपचाप देवू से सटकर चारपाई पर बैठ गया। आम दिनों की भाँति आज न तो उसने आते ही देवू से कोई मज़ाक किया और न उसके गले में बालों से भरा अपना हाथ डाला।

"मैं बहुत दिनों से तेरी दुकान पर नहीं आ सका, धीरज। प्रेस की नौकरी करना कोई हँसी-खेल नहीं है। वहाँ साफ़-सुथरे कपड़े न पहनो तो लोग मज़ाक उड़ाते हैं। तनख़्वाह भी तो शंभूदयाल कितनी-कितनी देते हैं। फिर

भी उसमें से अपने लिए नये कपड़े सिलवाना एक ज़रूरी खर्च समझा जाता है। अगले महीने मैं एक खाकी पेंट खरीदूँगा, पाँच-छः रुपये में आ जायेगी। उससे अगले महीने एक जूता भी मोल लेना होगा। मेरा जूता फट गया है, किसी दिन रामदयाल साहब ने देख लिया तो वह डाँट देंगे... वह मुझे दूसरे लोगों से अलग समझते हैं वरना कौन अपने डिब्बे से एक सिगरेट निकालकर मुझे देता और...हाँ धीरज, वह मुझसे एक गिलास शराब पीने को भी कह रहे थे...लेकिन मैंने पी नहीं। मैं नहीं चाहता कि वह मुझे एक लालची आदमी समझें. .।" देवू बिना धीरजसिंह की ओर देखे अपनी सारी कहानी उसे बतला रहा था। उसे स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं था कि धीरज उसकी बातों को नहीं सुन रहा है...वह तो समझता था कि इससे बढ़कर दिलचस्प और रोमांचकारी बात कोई और हो ही नहीं सकती।

अचानक धीरजसिंह के चेहरे की ओर देखकर देवू चौंक पड़ा, "अरे, तू तो रो रहा है, धीरज.. !" और इस बार देवू ने अपना हाथ धीरज के गले में डालते हुए स्नेह-भरे स्वर में पूछा, *"क्या बात हुई, धीरज? क्या* मुख्तारसिंह ने फिर तुझे पीटा है?"

धीरजसिंह के आँसू और भी तेज गति से उसके गालों पर बहते हुए उसकी हलकी-हलकी दाढ़ी में समाते गये। उसकी हलकी-सी बँधी पगड़ी में से उसके बालों की लटें उसके माथे पर सरक आयी थीं। उसने आँसू पोंछने का कोई प्रयास नहीं किया। देवू को जवाब न देकर वह उसी प्रकार चारपाई पर बैठा ज़मीन की ओर ताकता रहा।

"बोल न धीरज, क्या बात हुई है?" उसे चुप देखकर देवू को तनिक खीझ होने लगी थी। धीरजसिंह से उसकी मित्रता अवश्य थी और वह जानता था कि उसकी खुशी में केवल धीरजसिंह को ही सबसे ज्यादा खुशी होती है। प्रेस में नौकरी करने के पश्चात उसे धीरजसिंह से बातें करने का कभी अवसर नहीं मिला था और न पिछले दो-तीन इतवारों को सुबह के समय वह धीरजसिंह की दुकान पर चाय पीने गया था।

"मुख्तारसिंह ने मुझे दुकान से निकाल दिया...।"

"क्या...मुख्तारसिंह ने तुझे निकाल दिया? क्या बात हुई थी, धीरज?

यह तो वहुत वुरा हुआ।"

"आज दिन-भर न जाने कहाँ ग़ायव रहा? शाम को आया तो वहुत पीये हुए था, मैं दुकान पर वैठा चाय वना रहा था।" धीरजसिंह अत्यन्त उत्सुकता से देवू को सारा क़िस्सा विस्तार के साथ सुना रहा था, "आते ही उसने पाँच रुपये माँगे। मैंने सन्दूकड़ी खोलकर उसके सामने रख दी। उसमें ढाई से ज़्यादा नहीं थे। वह ग़ुस्से में आ गया और कहने लगा कि मैं पैसे खा जाता हूँ, दुकान में आमदनी ज़्यादा होती है, लेकिन मैं वीच में से हड़प कर लेता हूँ। मुझसे यह झूठा इल्ज़ाम इतने लोगों के सामने न सहा गया। मैंने कहा कि अगर उसे मुझ पर भरोसा नहीं है तो वह भी क्यों दुकान पर नहीं वैठता? मेरी सफ़ाई देने पर वह विगड़ गया और ज़ोर-ज़ोर से गंदी गालियाँ देने लगा। मैंने ज़ोर से उसे चुप होने को कहा तो वह मुझे वुरी तरह से पीटने लगा। कुछ लोग छुड़ाने आये तो मैंने सवसे कहा कि मुक्खा नशे में है, इस पर वह फिर गालियाँ देता हुआ मुझे मारने दौड़ा। लोगों के वीच-वचाव करने पर उसने ज़ोर-ज़ोर से कहा कि आज के वाद मैं फिर कभी दुकान पर न आऊँ और स्वयं दुकान वंद करके कहीं चला गया।"

देवू वोला, "लेकिन धीरज, तू तो शायद एक दिन कह रहा था कि दुकान पर आधा तेरा हक़ है, उसने तुम्हारे वाप के रुपये से यह दुकान खोली है...।"

धीरजसिंह ने तनिक जोश के साथ कहा, "वह तो सच वात है, देवू। उस वात को सारा मुहल्ला जानता था कि मुक्खासिंह के पास दो-ढाई हज़ार रुपया था, वह कहाँ से आया? मुक्खासिंह समझता है कि झूठ वोल कर वह मेरा हक़ मार लेगा, लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगा...मैं...मैं फिर कहता हूँ कि अगर सीधे से उसने मेरा हिस्सा न दिया तो मैं चुप नहीं वैठा रहूँगा। आख़िर ये वकील, ये कचहरियाँ किसलिए हैं?"

देवू थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर धीमे स्वर में कहने लगा, "मुक़दमों के लिए रुपये की ज़रूरत होती है। नहीं, धीरज...तू मुक्खासिंह से अच्छी तरह से वात कर। तेरे चाचा हैं न, उनके पास जाकर सारा हाल उन्हें वता, वह वीच-वचाव करवा देंगे।"

"अरे, वह नाम का चाचा है। कभी वह यह खोज-खबर तो लेता ही नही कि हम मर गये, या जीते हैं। वह उलटे हमारी हँसी उडायेगा और देवू, मुख्तारसिंह उसे कुछ रुपये देकर अपने साथ मिला सकता है।"

"तो फिर तू क्या करेगा ?"

"कुछ काम करूँगा, देवू, जिससे दो वक़्त का खाना मिल जाये...।"

सुभागी और लाली लौट आये थे। उन्होंने बाहर देवू के साथ धीरजसिंह को बैठे देखा। धीरज ने खड़े होकर सुभागी के सामने दोनों हाथ जोड दिये।

"ठीक तो है धीरज, बहुत दिनो बाद नज़र आया। दुकान कैसी चल रही है ?"

"ठीक है. ।"

सुभागी के झुग्गी के अदर चले जाने के पश्चात धीरजसिंह फिर चारपाई पर बैठते हुए देवू से कहने लगा, "तू अपने प्रेस के मालिक से पूछना। अगर उन्हे किसी आदमी की ज़रूरत हो तो. .।"

देवू को वह बात पसन्द नही आयी। अपने सब परिचितों के मन मे प्रेस के विषय मे वह ऐसे खाके खीचता था जिससे सबकी उत्सुकता प्रेस की जिंदगी के बारे मे बनी रहे। किसी-किसी बात को वह बहुत बढ़ा-चढाकर बतलाता था और किसी के बार-बार पूछे जाने पर भी चुप्पी साध लेता था। अतः अपनी इस छोटी-सी दुनिया मे धीरजसिंह के आने की इच्छा सुनकर देवू को बुरा लगा।

"नही धीरज, प्रेस मे अभी शायद कोई जगह नही है .उसके पास पहले ही आदमी ज्यादा है, तू इस रोड़ी कूटने के कारखाने मे क्यो नही कोई काम तलाश करता ? वहाँ तो बस्ती के बहुत-से लोग काम करते हैं।"

धीरजसिंह थोडी देर तक देवू के चेहरे की ओर देखता रहा। उसकी आँखो मे न क्रोध था और न ही खीझ, केवल उदासीनता की एक गहरी छाया समाती जा रही थी। यकायक धीरज कहने लगा, "मैं यहाँ से चला जाऊँगा, मुझे यहाँ से नफरत हो गयी है। मैं यहाँ दूसरो के टुकडों पर नही जी सकता।"

देवू धीरज की बात सुनकर ऊब उठा था। उसे भूख भी लग रही

यह तो बहुत बुरा हुआ।"

"आज दिन-भर न जाने कहाँ ग़ायब रहा? शाम को आया तो बहुत पीये हुए था, मैं दुकान पर बैठा चाय बना रहा था।" धीरजसिंह अत्यन्त उत्सुकता से देवू को सारा क़िस्सा विस्तार के साथ सुना रहा था, "आते ही उसने पाँच रुपये माँगे। मैंने सन्दूकड़ी खोलकर उसके सामने रख दी। उसमें ढाई से ज़्यादा नहीं थे। वह गुस्से में आ गया और कहने लगा कि मैं पैसे खा जाता हूँ, दुकान में आमदनी ज़्यादा होती है, लेकिन मैं बीच में से हड़प कर लेता हूँ। मुझसे यह झूठा इल्ज़ाम इतने लोगों के सामने न सहा गया। मैंने कहा कि अगर उसे मुझ पर भरोसा नहीं है तो वह भी क्यों दुकान पर नहीं बैठता? मेरी सफ़ाई देने पर वह बिगड़ गया और ज़ोर-ज़ोर से गंदी गालियाँ देने लगा। मैंने ज़ोर से उसे चुप होने को कहा तो वह मुझे बुरी तरह से पीटने लगा। कुछ लोग छुड़ाने आये तो मैंने सबसे कहा कि मुक्खा नशे में है, इस पर वह फिर गालियाँ देता हुआ मुझे मारने दौड़ा। लोगों के बीच-बचाव करने पर उसने ज़ोर-ज़ोर से कहा कि आज के बाद मैं फिर कभी दुकान पर न आऊँ और स्वयं दुकान बंद करके कहीं चला गया।"

देवू बोला, "लेकिन धीरज, तू तो शायद एक दिन कह रहा था कि दुकान पर आधा तेरा हक़ है, उसने तुम्हारे बाप के रुपये से यह दुकान खोली है...।"

धीरजसिंह ने तनिक जोश के साथ कहा, "वह तो सच बात है, देवू। उस बात को सारा मुहल्ला जानता था कि मुक्खासिंह के पास दो-ढाई हज़ार रुपया था, वह कहाँ से आया? मुक्खासिंह समझता है कि झूठ बोल कर वह मेरा हक़ मार लेगा, लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगा...मैं...मैं फिर कहता हूँ कि अगर सीधे से उसने मेरा हिस्सा न दिया तो मैं चुप नहीं बैठा रहूँगा। आख़िर ये वकील, ये कचहरियाँ किसलिए हैं?"

देवू थोड़ी देर तक चुप रहा, फिर धीमे स्वर में कहने लगा, "मुक़दमों के लिए रुपये की ज़रूरत होती है। नहीं, धीरज...तू मुक्खासिंह से अच्छी तरह से बात कर। तेरे चाचा हैं न, उनके पास जाकर सारा हाल उन्हें बता, वह बीच-बचाव करवा देंगे।"

यान किसी ने विशेष रूप
उम्र भी 25 या 26 से
खें और चौडा माथा और
लगाया था कि यह अन्य
किया करता था और
नही था। खाना
और स्कूल
टिप्पणियाँ किया
करता था।
तो खूबचन्द
नाम

थी। माँ के डर से उसने धीरज को खाना खाने का निमंत्रण नहीं दिया, नहीं तो वह अवश्य टिक जाता। देवू को धीरज पर क्रोध आ रहा था, वह भला धीरज की सहायता कर सकता है, उसकी अपनी मुसीवतें क्या कम हैं...मैं भला रामदयाल से धीरज की सिफ़ारिश कैसे कर सकता हूँ और यदि कर भी सकता तो भी अपने परिचित को मैं प्रेस में काम करते नहीं देखना चाहता।

थोड़ी देर वाद धीरज उठकर चला गया। देवू ने संतोप की साँस ली। वह चुपचाप कुछ देर तक धीरज के वढ़ते हुए क़दमों को देखता रहा, जो अँधेरे में गुम होते जा रहे थे।

धीरे-धीरे देवू वस्ती की दुनिया से दूर होता गया, वहाँ की ज़िंदगी में उसकी दिलचस्पी कम होती गयी। शाम को प्रेस से लौटकर भी उसके कानों में प्रेस की मशीनों की खटाखट गूँजती रहती और उसी के विचार उसके मस्तिष्क में भरे रहते। अव उसकी कमीज़ में हमेशा वटन लगे रहते थे और कभी फट जाने पर वह वड़ी चतुराई साथ स्वयं ही उसे सी लेता था। लाली पर उसे विश्वास नहीं था। लाली घर पर उसका मज़ाक वनाया करती थी, उसे जूते साफ़ करते देखकर उसकी हँसी उड़ाती थी और कभी-कभी जव वह प्रेस जाने लगता तो उसे 'देवू वावू' कहकर पुकारा करती थी। ऊपर से देवू झुंझलाता, क्रोध दिखलाता, कभी ग़ुस्से में लाली की चोटी खींच देता परन्तु मन-ही-मन उसे प्रसन्नता होती थी, यह एहसास होता था कि चुपचाप उसमें कुछ अन्तर अवश्य हुआ है। 'घर' में उसे पहले ही दिलचस्पी कम थी, परन्तु अव तो उसका स्थान गहरी उदासीनता ने ले लिया।

रामदयाल ने उस दिन के वाद फिर कभी देवू में विशेष उत्सुकता नहीं दिखलायी। जव कभी रामदयाल छः वजे के क़रीव प्रेस में होता था तो वाहर जाते समय देवू विभिन्न तरीक़ों से उसका ध्यान अपनी ओर आकर्पित करने की चेष्टा करता था, परन्तु सदा असफल रहता था। इससे देवू को काफ़ी निराशा हुई और एक दिन तो उसकी आँखों में आँसू भी टपक आये, परन्तु फिर कोई-न-कोई वहाना करके उसने अपने मन को ढाँढस देने की कोशिश की।

सोचता नहीं था कि किससे वह क्या बातें कर रहा है। कभी किसी से वह कोई सवाल पूछता तो झट दूसरे क्षण बिना उसका उत्तर सुने कोई दूसरी बात करने लगता था।

"क्या तुम दिल्ली में बहुत दिन से रहते हो?" देवू ने धीमे स्वर में पूछा।

खूबचन्द ने एक बार ध्यान से देवू की ओर देखा, बाल बनाकर कंघा उसने अपनी कमीज़ की जेब में रख लिया था और पैंट की जेबों में हाथ डालकर वह बोला, "मुझे तो यहाँ रहते ज़माना बीत गया। हाँ, सचमुच एक अरसा हो गया...दिल्ली की गलियों में ही मैं खेल-कूदकर बड़ा हुआ हूँ। दिल्ली के बाहर मैं गया ही नहीं।"

"कहाँ रहते हो तुम?"

'हौज़काज़ी जानता है न! उसी चौराहे के एक मकान में पाँचवीं मंज़िल पर मेरा एक कमरा है...एक दिन तुझे वहाँ ले चलूँगा, वहाँ से जामा मसजिद बिलकुल साफ़ दिखायी देती है और...छतों पर औरतों की धोतियाँ...नीली-पीली धोतियाँ...।"

खूबचन्द के पीछे-पीछे देवू भी प्रेस से बाहर निकल आया। मेज़ पै रामदयाल एक फ़ाइल पर झुका बैठा था और उसकी उँगलियों में एक सिगरेट दबी हुई थी, परन्तु आज देवू ने उस पर केवल एक उड़ती हुई निगाह डाली। इस प्रकार अकेले खूबचन्द के साथ बातें करने का आज पहली ही बार उसे मौक़ा मिला था।

"हूँ...आज फिर हवा नहीं चल रही...बादल तो आ जाते हैं, लेकिन पानी नहीं बरसता...।" बाहर निकलकर खूबचन्द ने ऊपर आसमान की ओर ताकते हुए कहा।

"एक प्याला चाय का पियोगे? मेरा तो बदन ही टूट रहा है...।" देवू ने खूबचन्द को चाय का निमंत्रण दिया। उसे खुशी हो रही थी कि उसकी जेब में आठ आने पड़े हुए थे, इस प्रकार उसकी खूबचन्द के साथ दोस्ती भी बढ़ जायेगी और उससे बातें करने का भी मौक़ा मिलेगा।

"अगर पिलायेगा तो ज़रूर पिऊँगा...मेरे पास पैसे नहीं हैं...।"

"चल, मेरे पास आठ आने हैं...।"

और दोनों सामने वाले 'गुलज़ार रेस्टोरेंट' मे जाकर बैठ गये। ख़ूबचन्द की जेब में सिगरेटें थी, उन दोनों ने एक-एक सुलगायी।

रेस्टोरेंट मे भीड़ ज्यादा थी। रेस्टोरेंट का मालिक एक पेशावरी था और वह हमेशा लंबी कमीज़ और एक सलवार पहने रहता था। एक कुर्सी पर बैठा वह हुक्का गुड़गुड़ाया करता था और जब ग्राहक नही होते थे तो उर्दू का एक अखबार पढा करता था। रेस्टोरेंट की दीवारों पर कुछ फिल्मो के पोस्टर लगे थे और सामने गाधीजी और सुभाष बोस की तसवीरें फ्रेम मे जडी हुई टॅगी थी।

"तुझे यहाँ प्रेस का काम कैसा लगा, देवू ? मेरी तो कभी-कभी यहाँ से छोड देने की तबीयत करती है, एक जगह टिककर मुझसे काम नही होता .. मेरी तबीयत हमेशा नये-नये काम और नये-नये आदमियों के बीच मे रहने को करती है, इसीलिए आज तक कभी मेरा कोई दोस्त नही बन सका ..।" और फिर सिगरेट का धुआँ सामने की ओर फेंकते हुए उसने पूछा, "तू यहाँ आने के पहले मोटर के कारखाने मे काम करता था न, शायद कोई कह रहा था ..।"

"मोटर के कारखाने मे नही, साइकिल की दुकान मे काम करता था...।"

"एक ही बात है .साइकिल बनाने की दुकान हो या कारख़ाना— तीन साल पहले मैं भी दरयागज के 'सुन्दर मोटर वर्क्स' में काम करता था, मैंने काफी काम सीख लिया था। उसके मालिक मेरे काम से ख़ुश भी थे और तनख़्वाह उन्होंने 150 रुपये कर दी थी लेकिन एक दिन किसी बात पर मालिक चिल्लाने लगा . हाँ, शायद उससे पहले दिन मैंने बिना कहे छुट्टी ले ली थी...बस, मैंने उसी दिन काम छोड़ दिया। सात दिन की तनख्वाह बाकी थी, वह भी लेने नही गया..।"

देवू जानता था कि प्रेस मे भी ख़ूबचन्द को सबसे अधिक काम आता है, मशीन के सामने खड़े होकर वह इस तरह फुर्ती से, सावधानी से काम करता था मानो मशीन उसके हाथ मे हो.. वह उसका मालिक हो।

नौकर दो प्याले चाय के ले आया था, ख़ूबचन्द बायी ओर दीवार पर लगी किसी अँग्रेज़ी एक्ट्रेस की एक तसवीर को देख रहा था और सीटी

में शायद कोई फ़िल्मी धुन गुनगुना रहा था। देवू कनखियों से उसके चेहरे की ओर देखता जाता था और खूबचन्द की बातें सुनकर उसके प्रति देवू के मन में भाँति-भाँति के विचार उठ रहे थे, कुछ अंदर के थे और कुछ उसकी लापरवाही के प्रति एक उपेक्षा की भावना थी।

"किसी दिन मैं यह प्रेस भी छोड़ दूंगा, यहाँ काम करते मुझे डेढ़ साल हो गया है, बस अब मेरी तबीयत ऊबने लगी है, और शंभूदयाल—बेईमान और चालबाज़...अव्वल नम्बर का चालाक आदमी है। हजारों कमाता है और दोनों बाप-बेटे शराब में उड़ा देते हैं और वह साला रामदयाल...यहाँ का लफ़ंगा आदमी, बहाने बनाने में नम्बर एक। प्रेस में तो उसका मन लगता नहीं और मोटर में लड़कियों को लिये घूमता फिरता है, मैंने कितनी ही बार उसे लड़कियों के साथ देखा है...और उस रात को...।" खूबचन्द हँसने लगा, फिर देवू की ओर देखकर कहने लगा, "तब तू नहीं आया था शायद छः महीने पहले की बात है...उस दिन मैं रात की ड्यूटी पर था, दो-तीन आदमी और थे जो पीछे काम कर रहे थे।

"शंभूदयाल घर में सो रहा होगा, वह रात को प्रेस में कम ही बैठता है। रामदयाल रात को 12 बजे के क़रीब आया। उस दिन शायद बहुत पी हुई थी। उसके साथ एक लड़की थी, वह भी नशे में थी। शायद कोई रंडी थी...और फिर दोनों ऊपर की जो बैठक है न, उसमें चले गये...।" वह हँसा, "समझा न, देवू...आधी रात को शराब में चूर रामदयाल और वह रंडी—दोनों बैठक में बंद रहे और फिर...मज़े की बात तो अब आती है। फिर वे दोनों निकले। बाहर बरामदे में न जाने क्या खुसर-पुसर होती रही, उस रंडी की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी। मैंने अंदाज लगाया कि किसी बात पर दोनों में झगड़ा हो रहा है। मैं दरवाज़े के पीछे चुपचाप खड़ा होकर दोनों की बातें सुनने की कोशिश करने लगा। रामदयाल उसे 50 रुपये दे रहा था और वह 100 रुपये माँग रही थी...हाँ-हाँ, इसी बात पर दोनों का झगड़ा हो रहा था...।" और खूबचन्द बड़े ज़ोर से हँसने लगा।

क्षण-भर के लिए देवू काँप उठा, परंतु यह भाव उसने अपने चेहरे पर व्यक्त न होने देने की कोशिश की।

खूबचन्द ने एक और सिगरेट सुलगायी और एक देवू को दी। चाय

खत्म हो गयी थी लेकिन, खूबचन्द का ध्यान इस ओर नहीं था। कभी वह बाहर सड़क की ओर देखता था और कभी दीवार के चित्रों को। देबू शुरू से ही महसूस कर रहा था कि खूबचन्द उसके प्रति उदासीन रहा है, कभी पूरी दृष्टि से उसने देबू की ओर नहीं देखा और जब देखा भी तब भी उसके विचार उसकी आँखों का साथ नहीं दे रहे थे। देबू ने उसे चाय का निमन्त्रण दिया—इसका उसने कभी कोई एहसान तक नहीं माना और यदि अब देबू उठकर भी चला जाये तब भी शायद खूबचन्द को पता न चले।

"और उस रात को रामदयाल ने बड़ी नम्रता से मुझसे कहा था कि इस विषय की चर्चा मैं कभी उसके बाप से नहीं करूँ। जब तो उसने मुझे पाँच रुपये का नोट भी देना चाहा था, लेकिन तब मेरा गुस्सा उबल पड़ा था। मैंने नोट उसकी मेज पर फेंकते हुए कहा था, 'बाबूजी, अभी आप मुझे जानते नहीं, मैं इतना कमीना आदमी नहीं हूँ हूँ...' वह मुझे रिश्वत देना चाहता था। बाद में मुझे अफसोस हुआ कि मैंने नाहक उसका नोट लौटा दिया। मुफ्त के रुपये मिल रहे थे ..ये सब-के-सब...छोटी तबीयत के आदमी होते हैं, सब की कीमत रुपयों से लगाते हैं..।"

"तुम क्या अपने माँ-बाप के साथ रहते हो, खूबचन्द ?" थोड़ी देर बाद चुप्पी तोड़ने के विचार से देबू ने खूबचन्द की ओर देखते हुए पूछा।

"मेरे माँ-बाप नहीं हैं। मैं अकेला रहता हूँ, बिलकुल अकेला...," खूबचन्द ने तनिक गंभीर होकर कहा।

देबू ने उसकी गंभीर मुद्रा देखी तो महसूस किया कि शायद यह प्रश्न पूछकर उसने कोई गलती की है। इस बात को उसने आगे नहीं बढ़ाया।

परन्तु खूबचन्द स्वयं ही कहने लगा, "माँ न जाने कब मरी, लेकिन बाप...वह बेचारा चार-पाँच साल हुए मर गया...अच्छा ही हुआ वह मर गया। दो साल तक खाट से लगा रहा ..रात को दर्द से चीखता था, लेकिन मुझे उसकी चीखों में भी सोते रहने की आदत पड़ गयी थी...और वह झूठ-मूठ पड़ोस वालों से कहा करता था कि मैं रात-भर उसके पाँव दाबता रहता हूँ...।"

परन्तु देवू के कानों तक खूबचन्द के परिवार की सारी बात पूरी तौर से नहीं गयी। वह रामदयाल के विषय में ही सोच रहा था, जो तसवीर रामदयाल की उसने पहली मुलाक़ात के बाद अपने दिमाग़ में बनायी थी उसका दूसरा पहलू खूबचन्द ने उसके सामने रखा था और वह भी बिलकुल नंगी शक्ल में। उसे खूबचन्द से एक प्रकार की घृणा-सी होने लगी...वह शायद रामदयाल से इसी कारण से घृणा करता है कि उसके पास पैसे हैं, मोटर है और वह शराब पी सकता है, लड़कियों के साथ घूम सकता है और यदि खूबचन्द भी उसकी जगह होता तब शायद वह भी रामदयाल की भाँति व्यवहार करता...और यह खूबचन्द सबके विषय में इतनी घृणा से बातें करता है, फिर भी ख़ूबचन्द के विषय में वह कोई निश्चित धारणा नहीं बना सका।

"तेरी उम्र क्या होगी, देवू?" अचानक देवू की ओर बड़े ध्यान से देखते हुए खूबचन्द ने पूछा।

देवू भी चौंक गया, उसने अन्यमनस्क स्वर में उत्तर दिया, "यही कोई 21-22 साल और क्या...!" और उसे हँसी-सी आ गयी। शायद मन-ही-मन खूबचन्द अभी तक बच्चा ही समझ रहा है और इसी कारण से वह इस प्रकार मुझसे बातें कर रहा है, बराबरी के स्तर पर उसका व्यवहार नहीं है। प्रेस में भी जब वह दूसरे लोगों से बातें करता है तो उसका लहजा दूसरा होता है। यह ख़ूबचन्द अभी तक मुझे बच्चा क्यों समझता है, मेरी सगाई हो गयी है और शादी भी जल्दी ही हो जायेगी...मेरी ठुड्डी के नीचे बाल भी उगने लगे हैं...।

"जानता है, देवू, कि मुझे छोटी-सी उम्र में सब बातें पता लग गयी थीं ...शायद मैं कभी बच्चा रहा ही नहीं। आठ साल से मैंने बीड़ी पीना शुरू कर दिया था, गली के लड़कों के साथ हम दुकानों से सामान चुराया करते थे और फिर आधे दामों में बेचा करते थे। दिवाली पर तो बस ईद हो जाती थी, भीड़ में दुकानों से सामान उड़ाना मुश्किल नहीं है। एक बार तो मैंने दिवाली वाले दिन एक आदमी की कलाई से घड़ी खींच ली और रफ़ूचक्कर हो गया। वह बेचारा चिल्लाता ही रहा, लेकिन मुझे कोई नहीं पकड़ सका, फिर तीन-चार दिन बाद जब डरते-डरते एक घड़ीसाज़ को बेचने गया तो

उसने घड़ी दबा ली, पैसे भी नहीं दिये। मैंने घड़ी वापस माँगी तो सिपाही को बुलाने की धमकी देने लगा...और मैं चुपचाप अपना-सा मुंह लेकर वहां से चला गया। अपने साथियों से घड़ी चुराने की बात न कहने का फल मुझे मिल गया...और यह रामदयाल साला समझता है कि हम सब भोले है, एक दिन कहीं टकरा गया तो साले की अक्ल ठिकाने आ जायेगी...देखा नहीं तूने, देवू...उसके गाल कितने पिचक गये हैं, आँखें पीली पड़ गयी हैं। ...ला ऐश करता है, लेकिन ऐश करने का तरीका नहीं जानता. .बस एक भूखे कुत्ते की तरह हड्डियों पर झपटता है...हूँ...!" और वह फिर मुसकराया।

बाहर अँधेरा होने लगा था, और मोटरों और बसों के हॉर्न से कभी-कभी गुलजार रेस्टोरेन्ट में रखे रेडियो की आवाज उनमें गुम हो जाती थी।

"अच्छा खूबचन्द...," अनायास ही उसका नाम लेते देवू को तनिक झिझक-सी हुई, "तुम्हें पहले-पहल प्रेस में देखकर मैंने सोचा था कि तुम यहां काम करने वालों से बिलकुल अलग हो और मैं आज समझता हूँ कि मेरी बात सच ही निकली. । लेकिन तुम्हारी . तुम्हारी बातों से कभी-कभी मुझे डर लगने लगता है...।"

"ह. हः हः...!" खूबचन्द ने फिर एक ठहाका लगाया, "मैं कहता था न कि तू अभी बच्चा है, निरा बच्चा, तूने अभी तक दुनिया नहीं देखी। तू अभी तक कुछ नहीं जानता...।"

देवू को बुरा लगा। उसे खूबचन्द पर क्रोध आने लगा। परन्तु वास्तव में खूबचन्द की बातों में उसे एक छिपा हुआ सुख मिल रहा था, जो विचार बहुत ही धुंधली और बिना शक्ल-सूरत की आरतों में बिखरे हुए-से उसके मन में आते थे उनका साकार रूप खूबचन्द उसके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा था, यद्यपि ऊपर से देवू सोचता था कि यह सब उसके लिए नहीं है, उसका इन बातों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

खूबचन्द जेब से कंघा निकालकर अपने बालों पर फेरने लगा। देवू उसकी आँखों की ओर देख रहा था, जिनमें वह खूबचन्द की गहराई को आँकने की कोशिश कर रहा था।

अचानक देवू कह उठा, "एक दिन रामदयाल मुझसे बातें कर रहा था, तब उसने बहुत ही दोस्ताना तरीक़े मे मुझसे बर्ताव किया था। उसे इसकी क्या ज़रूरत पड़ी थी...हम उनके पैसों पर चल रहे हैं...हम आख़िर उनके नौकर हैं...।" देवू और भी बहुत कुछ कहना चाहता था, परन्तु खूबचन्द को खुली आँखों से अपनी ओर ताकता देखकर वह चुप हो गया, उससे आगे कहने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई।

परन्तु थोड़ी देर तक खूबचन्द कुछ बोला नहीं, इस बार उसके होंठों पर मुसकराहट नहीं थी। वह कुछ और ही सोच रहा था। देवू की बात उसने सुनी अवश्य थी, परन्तु उसके विषय में वह सोच नहीं रहा था। फिर धीमे स्वर में कहने लगा, उसके मुख पर गम्भीरता थी, "हमारी और रामदयाल की ज़िन्दगी में बहुत फ़र्क़ है, देवू...बस यहाँ प्रेस में हम लोग मिलते हैं नौकर के रिश्ते को लेकर, लेकिन बाहर कभी हमारे रास्ते एक नहीं होते...हो ही नहीं सकते। तू कहाँ तक पढ़ा है, देवू ?"

प्रश्न सुनकर देवू का चेहरा लाल हो गया। इधर जब से उसने प्रेस में काम करना शुरू किया है तब से वह हमेशा यह महसूस करता है कि उसका पढ़ा हुआ न होना उसकी बेइज्जती है। वह धीमे स्वर में बोला, "यही कोई पाँचवीं-छठी तक पढ़ा हूँ...।" यद्यपि देवू चौथी के बाद फिर कभी स्कूल नहीं गया था।

"और मैं तो कभी स्कूल ही नहीं गया, हम किताबों की आँखों से दुनिया को नहीं देखते, हमारी अपनी ज़िन्दगी हमें सब-कुछ सिखा देती है। यही तो हमारे और रामदयाल जैसे लोगों में फ़र्क़ है, वह शायद बी० ए० पास है, कॉलेज में पढ़ा है और अब ऐश करता है। क्या कभी वह हमें समझ सकेगा ? हमारे साथ क्या हमदर्दी दिखा सकेगा ? मैं जानता हूँ, देवू, कि उनके और हमारे रास्ते कभी एक नहीं हो सकते...।"

देवू ध्यान से खूबचन्द की बातें सुनता रहा। कुछ उसकी समझ में आयीं और कुछ को वह नहीं समझ सका। परन्तु वह अनुभव कर रहा था कि वे उसके लिए नयी हैं।

घर लौटते समय कितने ही विचार देवू के मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे थे और एक साथ उन सबको समझना और सुलझा लेना असम्भव-सा

जान पड रहा था। उसकी जिन्दगी की कुछ झाँकियाँ जिनको धुँधली छाया देवू ने देखी थी, वे सब-की-सब उसके दिमाग में घूम रही थीं। परन्तु रामदयाल के विषय में जो कुछ उनसे कहा था उससे देवू पूर्ण रूप से सहमत नही हो सका। वह उससे घृणा नही कर सका, जो उसने खूबचन्द की आँखों में देखी थी। रामदयाल अमीर आदमी है, नयी दिल्ली में उसका बँगला है, मोटर है और नौकर-चाकर भी होंगे और इसीलिए वह शराब पी सकता है, लडकियों को लेकर घूम सकता है और अगर खूबचन्द या वह स्वयं उसके स्थान पर होता तो वह भी वही करता...फिर भला उससे घृणा कैसी, और क्यों ?

पान-सिगरेट की दूकानो पर भीड थी, लोग दिन-भर काम करने के पश्चात पसीना आदि सुखाकर नहा-धो लेने के बाद फिर बाहर सड़को पर आकर अपनी-अपनी टोलियाँ बनाकर खडे हो गये थे और परस्पर बातें कर रहे थे, मुँह में पान थे और होठो मे सिगरेटें। देवू को खस के शर्बत की सुगंध बहुत अच्छी लगती थी और उसका गिलास पीते समय तो उसकी तबीयत करती थी कि वह कभी खत्म हो ही नही ..और इसलिए वह काफी देर तक बर्फ़ घोलता-घोलता छोटे-छोटे घूँट भरता रहता था। थोडी-थोड़ी हलकी हवा चलने लगी थी, देवू ने अपनी कमीज के बटन खोल लिये और जब कोई ठंडी हवा का झोंका उसकी पसीने से भरी छाती से जा टकराता तो देवू के सारे शरीर मे ठडक की एक लहर घूम जाती थी। वह सीटी बजाने लगा...भोला से बहुत दिनों से मुलाकात नही हुई, वह शायद अब भी फिल्मों में गाने के स्वप्न देखता होगा, बस्ती के लोगों ने बेकार ही उसे झूठी आशाएँ बँधा रखी हैं...अचानक एक लड़के को अपने सामने जाते देखकर उसे सुन्दर की याद आयी...सुन्दर पीछे से बिलकुल ऐसा ही लगता था, लम्बी पतली गरदन और रूखे बाल...सुन्दर की याद शायद घर-भर मे उसे सबसे कम आती थी, परन्तु जब आती थी तो उसका सारा शरीर और मन झुलस-सा जाता था। वह महसूस करता था, मानो उसकी छाती में कोई भारी-सी चीज़ अकड़ी-सी जा रही है। लाली सोचती थी कि सुन्दर की मृत्यु से मुझे कोई दुख नही हुआ और इसी कारण से कुछ दिन तक वह मेरी ओर बड़ी अजीब-सी दृष्टि से देखती रही, लेकिन आखिर मैं उसे कैसे

समझाता ? सुन्दर की घर में किसी ने भी क़द्र नहीं की। बाबू ने उसे स्कूल से छुड़वाकर दुकान पर लगा दिया...लाली उसे चाहती अवश्य थी, लेकिन इसमें शक है कि वह उसे ठीक तरह समझ सकी थी। लाली ही क्या, शायद कोई भी उसे समझ नहीं सका था और भला समझ भी कैसे सकता था, सुन्दर चुप जो रहता था, अपने मन की बात उसने किसी से नहीं की।

प्रेस की नौकरी देवू के लिए पुरानी पड़ती जा रही थी। यह बात नहीं कि उसमें उसे कोई उत्साह नहीं रहा था, या वह अपने काम से ऊबता जा रहा था, परन्तु जो रहस्यमय वातावरण उसे पहले-पहल प्रेस के चारों ओर दिखायी देता था, उसकी मशीनों के कालेपन के अन्दर जो चकाचौंध उसे दिखायी देती थी वह अब समाप्त हो गयी थी। रामदयाल के साथ उसका परिचय अधिक नहीं बढ़ा जिसकी पहली भेंट के बाद उसने उम्मीद लगायी थी, परन्तु उस दिन की खूबचन्द की बातें सुनकर भी देवू अपने और रामदयाल के बीच में वह रेखा नहीं खींच सका जिसकी उसने उस दिन कल्पना की थी। खूबचन्द के साथ भी यदा-कदा उसकी बातचीत होती रहती थी, वह चुपचाप उसकी बातें सुना करता था और बाद में कुछ वह भूल जाता और कुछ के बारे में अकेला सोचता।

एक दिन शाम को काम से लौटकर वह बाहर लाली के पास बैठा उससे बातें कर रहा था, "कभी-कभी प्रेस में काम करते वक़्त अचानक मुझे यह ख़याल आ जाता है कि जहाँ मैं काम कर रहा हूँ, वह जगह सुन्दर के लिए थी। बाबू ने भी शंभूदयाल से सुन्दर के विषय में ही बातचीत की थी ...यह सोचकर क्षण-भर के लिए मेरे हाथ रुक जाते हैं...।"

लाली ने कुछ नहीं कहा, वह उसी प्रकार चुपचाप बैठी हुई दूसरी झुग्गियों की ओर देखती रही। देवू ने धुंधली रोशनी में लाली के चहरे पर दृष्टि डाली, उसकी आँखें चमक रही थीं और गोल-से चेहरे पर बचपन के जो अन्तिम चिह्न बाक़ी बचे थे, वे सब धीरे-धीरे विदा ले रहे थे। उसके होंठ बन्द थे और वहाँ से आवाज़ निकालने की चेष्टा की भी कोई निशानी नज़र नहीं आ रही थी।

थोड़ी देर तक देवू भी चुप रहा, जब कभी थोड़ी-सी हवा चलती तो ऊपर लगे पेड़ के पत्ते बज उठते थे, कभी-कभी बसेरा ढूंढते हुए पक्षियों की

एक टोली उनके ऊपर से गुज़र जाती...।

"परसों बाबू कह रहे थे कि कमेटी के कुछ आदमी यहाँ बस्ती को देखने आये थे, वे कहते थे कि यहाँ की झुग्गियाँ गिरा दी जायेंगी और यहाँ ऊँचे-ऊँचे मकान बनेंगे जैसे पूसा रोड पर हैं..," लाली ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा।

कुछ देर तक तो देवू अपने ही विचारों में मग्न था और लाली की बात उसके कानों तक पहुँच कर भी अपना मतलब उसे समझा नहीं सकी, परंतु क्षण-भर बाद ही देवू उसका अर्थ समझ गया—"हूँ ..झुग्गियों को गिरा कर यहाँ मकान बनेंगे, और झुग्गियों में रहने वाले कहाँ जायेंगे ?"

"यह तो पता नहीं, लेकिन बाबू कहते थे कि यह ज़मीन नीलाम की जायेगी और फिर यह ऊँची-नीची सड़क बराबर की जायेगी, यहाँ तीन और चार-मंज़िले मकान बनेंगे, बाग बनेंगे, सड़कें बनेंगी. ।"

देवू ने कहा, "तुझे याद है न लाली, पाँच साल पहले जब सारे शहर का चक्कर लगाते-लगाते हम इस बस्ती में आकर टिके थे, तभी बाबू को कोई जान-पहचान वाला मिल गया था, उसने बाबू से यहीं एक झुग्गी बना लेने को कहा था, लेकिन तब यहाँ सन्नाटा था, वीरान था। तुझे याद है न लाली जब मैंने, हुकम ने और सुन्दर ने—सबने मिलकर यह झुग्गी बनायी थी, तब अपना यह छोटा-सा घर देखकर हम सबको कितनी खुशी हुई थी। लेकिन आज सब-कुछ बदल गया मालूम पड़ता है...दिन कितने जल्दी बीत जाते हैं ! कब सर्दियों के बाद गर्मियाँ, फिर बरसात और फिर सर्दियाँ आ जाती है...लेकिन...लेकिन अब मुझे इस बस्ती में ज्यादा दिलचस्पी नहीं रही है...मैं यहाँ से ऊब रहा हूँ...।"

"और मुझे ऐसा महसूस होता है जैसे कि मैं हमेशा ही इस बस्ती में रहती रही होऊँ...," लाली ने थोड़ी देर बाद कहा, "ये पगडंडियाँ, चट्टानें, झाड़ियाँ और ऊपर आसमान—सबसे मैं परिचित हूँ। अच्छा देवू, कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि ज़िंदगी इसी तरह चलती रहती है, कभी यह रुक क्यों नहीं जाती ? थोड़ी देर के लिए एक मिनट-भर के लिए ही सही—लोग जहाँ हैं वहीं रुक जायें, ये मोटरें, ताँगे, साइकिलें कोई भी आगे न भाग सकें, तब मैं देखूँ कि लोग रुक कर क्या करते हैं, क्या सोचते हैं ?"

देवू हँसा, "तू पागल है, लाली...हमारे प्रेस में मशीनें हमेशा चला

करती हैं खटाखट...खटाखट...लेकिन जब थोड़ी देर के लिए रुक जाती हैं तो हम सबको बड़ा अजीब-सा लगने लगता है जैसे हम सब मर गये हों। उस सन्नाटे में कोई बात नहीं करता, और जब मशीनें फिर चलने लगती हैं तो हम सबके चेहरों पर शांति और तसल्ली वापिस आ जाती है। मेरे ख़याल में हम सब इन मशीनों जैसे हैं, जब रुक जाते हैं तो मर जाते हैं।"

"और फिर...?" हठात लाली ने देवू की ओर देखकर पूछा।

"और फिर...फिर ख़त्म हो जाते हैं, राख हो जाते हैं...," देवू ने मानो क्रोध से कहा।

"और स्वर्ग...नरक...फिर अगला जन्म...वह सब भी तो होता है।"

देवू थोड़ी देर चुप रहा—"शायद होता होगा जिसे किसी ने नहीं देखा, किसी ने उसके बारे में नहीं बतलाया...।"

"तो सुन्दर ख़त्म हो गया, देवू ? उसने फिर जन्म लिया होगा...कहीं-न-कहीं वह फिर आया होगा...वह इस जन्म की सारी बातें भूल गया होगा, हम सबको भी...।" उसका गला रुँधने लगा।

देवू सुन्दर का नाम सुनकर चौंक पड़ा...तो उसी कारण से लाली बातों को घुमा-फिरा कर पूछ रही थी, शायद सोचती रही होगी। उसने ध्यान से लाली की ओर देखा, लेकिन अँधेरे में उसकी खोयी हुई आँखों को वह नहीं देख सका। वह धीमे स्वर में बोला, "हमारे लिए तो वह ख़त्म हो गया, लाली, अब चाहे कहीं भी पैदा हो...।"

"नहीं-नहीं देवू, ऐसा नहीं हो सकता। हम सब मर कर उससे मिलेंगे। एक दिन माँ कह रही थी कि हम सब मर कर परलोक में फिर इकट्ठे रहा करेंगे। वहाँ ऐसी झुग्गियाँ नहीं होंगी, वहाँ महल होंगे। और अब सुन्दर महलों में रह रहा होगा...।"

देवू थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर मुसकराने लगा, लेकिन उसका मुसकराना लाली नहीं देख सकी।

सुभागी बाहर से लौटी तो उन दोनों को झुग्गी के बाहर बैठे देख कर बिना कुछ कहे-सुने अन्दर चली गयी। इधर पिछले कुछ दिनों से सुभागी कथा-वार्ता, कीर्तन, मंदिरों आदि में अधिक जाने लगी थी। हर मंगलवार को व्रत रखती और रोज़ सुबह तड़के ही कुछ अन्य स्त्रियों के साथ

मंदिर चली जाती थी और लगभग दो घंटे बाद लौटती थी। परंतु घर में उसके व्यवहार में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था, बल्कि कौशल्या के साथ उसका झगडा और भी बढ़ गया था; कौशल्या भी एक बात का जवाब चार-चार बातों से देने लगी थी। पहले तो कभी-कभी सुभागी को चिल्लाते देखकर वह चुप भी रह जाती थी, लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता था कि जान-बूझ कर वह सुभागी से झगडा मोल लेना चाहती थी और जो बात सुभागी को बुरी लगती उसे ही वह दोहराया करती थी।

बाहर लाली कहने लगी, "न जाने, भाभी को क्या होता जा रहा है... पता नहीं, उन्हें हुकम की कभी याद आती है या नहीं? और बाहर जाती हैं तो इतनी सज-बन कर कि मुझे शरम आने लगती है...।"

देवू ने धीमे स्वर में लाली से पूछा, "तुझे मालूम है, लाली, कि भाभी के पास पैसे कहां से आते हैं? पिछली बार तुझे याद है न जब वह नया सूट बनवा कर लायी थी तब कहती थी कि उनकी मामी की लड़की ने दिया है, लेकिन मैं जानता हूँ कि यह झूठ है। कभी यहां आकर बात तक तो पूछी नहीं और वह सूट बनवाकर देते हैं...!"

लाली ने भी चौंक कर देवू की ओर देखा, देवू के इस बात के पूछने का मतलब वह समझ गयी थी। जिस प्रश्न को पहले कितनी बार उसने अपने-आप से पूछा था उसी को देवू के मुख से सुनकर उसे सान्त्वना भी हुई और एक आशंका भी।

"अभी कुछ दिन पहले मैंने उनके कपडों के नीचे एक पाउडर का डिब्बा भी देखा था। जब भाभी झुग्गी में अकेली होती हैं तो न जाने देर-देर तक शीशे में अपना मुंह देखती हुई कुछ गुनगुनाया करती है और जब कभी मैं उस समय वहां पहुँच जाती हूँ तो वह मुसकराने लगती हैं। एक बार वह पूछने लगी, क्या वह अभी तक खूबसूरत हैं? मैं क्या कहती! मुझे तो उनसे अकेले में बातें करने पर भी डर लगता है...।"

देवू चुपचाप लाली की बातें सुन रहा था। कुछ बातें वह स्वयं जानता था और कुछ का पता उसे लाली से लगा था। लेकिन आखिर कौशल्या क्या करे? हुकम तो उसे और दीनू को छोड़कर चला गया, लेकिन कौशल्या को तो अपनी सारी ज़िंदगी बितानी है। इस घर से तो दो वक़्त का भरपेट

खाना मिलने की भी उसको उम्मीद नहीं है।

देवू इस वातावरण को देखता था और उसकी घर और वस्ती से ऊव और भी तीव्र होती जाती थी। इन वातों का विचार जव कभी उसके मन में आता तो वह उसे वाहर निकाल देने की भरसक कोशिश किया करता था। दिन-भर वह प्रेस में विताता था और रात को सोकर वह दिन-भर की थकान मिटाने की कोशिश करता था...।

रात को जव नानकचन्द दुकान वंद करके लौटे तो देवू और लाली खाना खा चुके थे। कौशल्या रोटी पका कर उठी थी और लकड़ियों की गर्मी और पसीने को वह ठंडे पानी से मुँह-हाथ धोकर दूर करने की कोशिश कर रही थी। सुभागी को रात को वहुत कम दिखायी देता था, लेकिन आज इस समय भी वह अपनी चुन्नी सी रही थी। देवू वाहर जाकर अपनी चारपाई पर वैठ गया।

इधर पिछले कुछ दिनों से नानकचंन्द ने घर में किसी से भी वात करने की मानो क़सम खा ली थी। दुकान से लौटते तो चुपचाप खाना खाकर अपनी चारपाई पर पड़े रहते, नींद उन्हें 11 या 12 वजे से पहले नहीं आती थी। उनके चेहरे को देखकर कोई भी अनुमान लगा सकता था कि उम्र के तकाज़ों से पहले ही उन्होंने अपने सारे संघर्ष को और सारी शक्ति को अपने से अलग कर दिया है। उनके चेहरे की झुरियाँ वहुत स्पष्ट रूप से प्रतिदिन गहरी होती जा रही थीं। सुभागी भी अव अपने और कौशल्या के झगड़ों के विषय में उनसे शिकायतें नहीं करती थीं। 20 या 25 दिन पहले रोज की भाँति जव एक दिन नानकचन्द के सामने सुभागी अपने रोने रो रही थी तो नानकचन्द अपना सारा धैर्य खो वैठे और उस दिन वहुत ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर उन्होंने एलान कर दिया कि अगर फिर कभी उनसे किसी ने कोई शिकायत की तो वह घर छोड़ कर दिल्ली से कहीं वाहर चले जायेंगे। उनकी आवाज़ में एक ऐसी सच्ची धमकी थी जिसे सुनकर सुभागी काँप उठी और उनकी इस वात की सच्चाई का आभास भी उसे लगा। उस दिन के वाद फिर कभी सुभागी ने उनसे कोई शिकायत नहीं की। उनके दुकान पर जाने के वाद वह अवश्य अपने भाग्य को कोसा करती थी।

कपड़े उतारकर चारपाई पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "आज रलियाराम दुकान पर आये थे..।" उनके स्वर मे आज अधिक नम्रता थी जिससे प्रतीत होता था कि सचमुच ही वे गभीरता और सहृदयता से बातें करना चाहते हैं। चेहरे पर भी जो झुर्रियाँ और सफ़ेद मूछों के बाल एक सख्त मुद्रा का प्रदर्शन करते थे, वे सहानुभूति के प्रतीक बने हुए थे।

लाली कोने मे बैठी नानकचन्द की ओर देख रही थी, रलियाराम का नाम सुनकर एक बार उसने खुले दरवाजे से बाहर झाँका और चाँदनी मे चारपाई पर लेटे देवू को सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए देखा। बाबू आज मुसकरा-से क्यो रहे है .उनकी मुसकराहट के पीछे दूसरो को चेतावनी देने वाली कोई अनुभूति छिपी है। वह क्षण-भर के लिए चौक-सी गयी। नानकचन्द को देखकर सदा उसके मन मे एक छिपी आशका उभरने लगी थी कि अब वह हँस-हँसकर कोई ऐसी घटना बतलायेंगे जिसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता था।

सुभागी ने भी अपनी माला फेरना रोक दिया और कनखियो से नानकचन्द की ओर देखने लगी..।

"उनकी लडकी को अब फिर बुखार रहने लगा है, कभी हलका हो जाता है और कभी तेज़। मैं जानता हूँ कि उसे तपेदिक है, लेकिन वह मुझसे छिपाने की कोशिश कर रहे थे...हू ..।" और वे तनिक ज़ोर से हँस पड़े—"ऐसी सूरत मे ब्याह कैसे हो सकता है? आज मैंने साफ इनकार कर दिया। बीमार लडकी को घर में लाकर उसकी दवा-दारू कराना मेरे वश की बात नहीं है, और अगर आगे जाकर कुछ हो गया तो रलियाराम सारी बिरादरी में हमारी बदनामी करेंगे कि उनकी लडकी को हमने मार डाला।"

कौशल्या सिर झुकाये कुछ बर्तन धोती रही। लाली को धक्का-सा लगा, उसे पता था कि देवू लिट्टो को कितना प्यार करता है, उसके बीमार होने पर उसकी उत्सुकता लाली से छिपी नही थी और वह लाल झुमकों की जोड़ी—जो देवू ने उसके हाथ लिट्टो के लिए भेजी थी, क्षण-भर के लिए लिट्टो का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम गया।

नानकचन्द फिर कहने लगे, "रलियाराम तो चाहते हैं कि इस बार

लिट्टो के अच्छा होने पर और फिर बुख़ार आने से पहले ही देवू और उसका ब्याह कर दें, लेकिन मैं उनकी सब चालें समझता हूँ। और...और अब तो देवू को अच्छा काम मिल गया है, तरक़्क़ी भी होती जायेगी, रलियाराम से अच्छे घर मिलेंगे।"

सुभागी ने फिर माला जपना आरम्भ कर दिया था। परन्तु उसके विचार कहीं और थे।

लाली झुग्गी के दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गयी और बाहर झाँकने लगी। चाँदनी में सब पेड़, बिखरी हुई झुग्गियाँ, झाड़ियाँ, पगडंडियाँ चमक रही थीं, उसने ऊपर आसमान की ओर देखा, कहीं भी उसे किसी बादल का टुकड़ा दिखायी नहीं दिया। देवू अपने हाथों को सिर के नीचे दबाये लेटा हुआ था। नहीं-नहीं, लाली उसे यह समाचार नहीं बतलायेगी...उससे कहा ही नहीं जायेगा, कल सुबह उसे स्वयं ही सब-कुछ पता चल जायेगा। शायद लिट्टो भी मर जायेगी जैसे सुन्दर मर गया है। बहुत दिन पहले की बात है, एक बार किसी सहेली ने उसे बतलाया था कि मरकर सब तारे बन जाते हैं, तभी तो आसमान में इतने अनगिनत तारे हैं, अगर कोई गिने तो उसे पता चलेगा कि रोज़ ही इन तारों का नम्बर बढ़ता जाता है...तो शायद सुन्दर भी इन तारों में से होगा...और वह खोजने लगी। धुँधले और चमकीले तारे उसकी आँखों में मोतियों के समान घूमते गये, सुन्दर छोटा था, उसका छोटा और धुँधला-सा ही तारा होगा। वह दूर जो हलका-सा दिखायी दे रहा है, वही सुन्दर है और फिर आँख झपकते ही वह गुम हो गया। लिट्टो भी शायद ऐसा ही एक तारा बन जायेगी जो दिन में ग़ायब हो जाते हैं और रात को अपने घर वालों और परिचितों की ओर एकटक लगाये देखते रहते हैं। दूर कहीं ढोलक की आवाज़ आ रही थी और उसी के स्वर में मिले हुए दो-तीन स्त्रियों के स्वर गूंज रहे थे। लाली फिर देवू की ओर देखने लगी। कुछ देर तक आसमान में तारों की ओर देखते रहने पर उसके मस्तिष्क में तारे इतने अधिक छा गये थे कि देवू के मुंह में लगी सिगरेट का जलता हुआ भाग भी उसे तारा जान पड़ा। देवू भी एक तारे से कम नहीं, वह ज़मीन का तारा है...हम सब ज़मीन के तारे हैं जो एक दिन आसमान में जा बसेंगे...।

देवू खाना खाकर बाहर निकला तो उसने लाली को चारपाई पर बैठे देखा। कौशल्या घर में नहीं थी, तीन-चार दिन पहले वह अपने चाचा के घर आनन्द पर्वत कुछ दिन के लिए चली गयी थी, क्योंकि चाचा के लड़के की शादी थी और चाची स्वयं आकर उसे लिवा गयी थी। थोड़े दिनों के परिवर्तन की कल्पना से कौशल्या को ख़ुशी ही हुई थी और सुभागी ने भी सोचा था कि घर में कुछ दिन के लिए शान्ति रहेगी।

चारपाई पर लेटकर आसमान की तरफ़ देखते रहना और लिट्टो के विषय में सोचना देवू को अच्छा नहीं लगा। थकान होने पर भी जल्दी ही नींद नहीं आयेगी, यह वह जानता था। और थोड़ी ही देर में घर के काम से निवृत्त होकर सुभागी अपनी चारपाई पर बैठकर धीरे-धीरे कोई भजन गुनगुनायेगी—इस विचार को भी वह सहज में ही सहन नहीं कर सका।

अपने विचारों को देवू किसी ऐसे बिन्दु पर केन्द्रित कर देना चाहता था जिससे उसका मन कहीं और दौड़कर छलांगें लगाने के बदले एक पिंजड़े में बन्द हो जाये, परन्तु चारपाई पर लेटकर ऐसा होना असभव है .. वह लाली से ही बातें करे—पिछले दिनों की, सुन्दर की, हुकम की, अपने बचपन की...हूँ...।

कोई भी बात करने पर वह अपने विचारों को बाँध नहीं सकेगा .. लाली की ओर देखते समय लिट्टो का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमेगा।

"लाली, मैं ज़रा सैर करने जा रहा हूँ, देर से लौटूंगा," देवू ने कहा।

लाली ने जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप फटी-फटी आँखों से देवू की ओर देखती रही। देवू ने समझा कि शायद लाली सोच रही है कि वह भी हुकम की तरह से चला जाये और शायद फिर न लौटे। इस विचार से उसे हँसी आने लगी।

पगडंडियाँ पार करता हुआ वह पक्की सड़क पर आ गया और ऊपर चढ़ाई चढ़ने लगा। जेब में से सिगरेट का पैकेट निकालकर उसने एक सिगरेट सुलगायी। सड़क पर अधिक भीड़ नहीं थी। कुछ साइकिलों वाले और कुछ बसें और मोटरें अपनी तेज़ रोशनी सड़क पर डालती हुई आगे बढ़ी जा रही थीं। देवू मोटरों और बसों के पीछे लगे उनके नम्बर देखने

लगा। कभी-कभी रास्ता काटने के लिए वह ऐसा किया करता था। परन्तु आज उसने अनुभव किया कि ये राह चलते लोग उसके लिए परछांइयों से अधिक नहीं थे। वे केवल चाभी वाले खिलौनों की भाँति मन्द चाल से चलते थे, जिनमें अपना कोई अस्तित्व नहीं था। वह सोचने लगा कि उसने इन सब लोगों से अलग हो जाना चाहा है, उनमें कभी उसने सहानुभूति नहीं देखी, दर्द नहीं पाया, उनमें गति नहीं थी। परन्तु क्या वह अपने-आपको इस भीड़ से अलग कर पाया था? चाहे प्रेस के लोगों के बीच, या सड़क की भीड़ के साथ एक ही रास्ता तय करते हुए, या बस्ती के परिवारों के साथ जहाँ पाँच सालों से वह उनके साथ रह रहा था। अपने और उनके बीच में सदा एक रेखा खीचने का, सदा एक दीवार बनाने का प्रयास उसने मन-ही-मन किया था।

रेस्तराँ का नौकर चाय का प्याला उसकी मेज़ पर रख गया। देवू उस 14-15 साल के पहाड़ी नौकर को पीछे से देखता रहा। उसकी गरदन पर महीनों की जमा हुई मैल चमक रही थी और उसके बाल पीछे से किसी पक्षी का झोंपड़ा-सा मालूम पड़ रहे थे। उसके प्रेस का एक आदमी बतला रहा था कि रेस्तराँ का मालिक नौकर को दो-तीन महीने रखकर फिर उसे मारने-पीटने लगता जिससे वह बिना वेतन लिये भाग जाये, इसी कारण से हमेशा यहाँ नये नौकर दिखायी देते थे।

रेस्तराँ में लगे रेडियो में एक फ़िल्मी रेकॉर्ड बजने पर अचानक देवू को खूबचन्द की याद आने लगी। वह अभी तक समझ नहीं सका था कि ख़ूबचन्द के प्रति उसके मन में आदर था या घृणा? उसकी बातों का उस पर गहरा प्रभाव पड़ता था, इसे वह जानता था। उसकी कुछ बातों को वह मन-ही-मन अच्छा न समझते हुए भी उन पर घंटों सोच-विचार किया करता था और कभी-कभी तो उस जैसे बनने की तीव्र चाह उसके मन में उठती थी। ख़ूबचन्द एक ऐसा आदमी था जो एक क्षण के निश्चय पर विश्वास करता था, एक बात एक बार उसके मन में समा जाती तो उसे पूरा करके ही छोड़ता, लेकिन वह लाख कोशिश करने पर भी ऐसा नहीं कर सका। ख़ूबचन्द इससे कहता था कि वह इस नौकरी पर ज्यादा दिन नहीं टिकेगा, उसे रामदयाल से भी नफ़रत थी, और एक दिन प्रेस आने

पर देवू को पता चला कि खूबचन्द अब काम पर नहीं आयेगा। इस विषय पर प्रेस में काम करने वालों के बीच काफी चर्चा चली थी, बड़ी उम्र के लोग उसके विचारो से सहमत नही थे और कम-उम्र के जवान उसकी बातों मे अपनी अतृप्त अभिलाषाओ को पूरा होते देखते थे। परंतु इस बात पर कोई मतभेद नही कि वह आदमी एक ही था, उस जैसे ज्यादा व्यक्ति दुनिया मे दिखायी नही देते। देवू ने एक लम्बी साँस ली। उसकी थकान उतर गयी थी। सिगरेट के धुएँ को वह देखने लगा, मुँह से निकलने के बाद क्षण-भर मे वह बाहर की हवा मे मिलकर अपना अस्तित्व खो देता था। सामने वाली मेज पर दो छात्र किताबों पर कोहनियाँ टेके धीरे-धीरे चाय के घूंट भर रहे थे और परस्पर बातचीत मे मग्न थे। देवू ने महसूस किया कि वह अकेला है, बहुत अकेला किसी से जी भर कर बातें करने की इच्छा प्रबल हो उठी। वे लडके किताबो की बातें करते होंगे, अपनी परीक्षाओ के बारे मे सोचते रहेंगे जैसे सुन्दर करता था. आखिर कब तक वह इस प्रकार घिसटता रहेगा? जब कभी उसके काम से खुश होकर रामदयाल उसके वेतन में 5 या 10 रुपयो की तरक्की कर दें तो उसे खुशी होगी और जब वे गुस्सा होंगे तो उसे दुख होगा उसकी अपनी खुशी और अपना दुख दूसरों पर निर्भर है, यह महसूस करके उसे अपने-आप से ही विरक्ति-सी होने लगी। जो लोग आत्महत्या करते हैं, क्या वे दुनिया में सबसे ज्यादा दुखी होते हैं, क्या जीना उनके लिए असम्भव होता है ? और भोला कहता था कि उसे मरने से डर लगता है और उसके साधूबाबा मौत को जीतने की कोशिश कर रहे है। उसे हँसी आने लगी...क्यो ? क्या ज़िंदगी से वे संतुष्ट नही होते, क्या वही काफ़ी नही है ? कुछ लोगों के लिए एक ज़िंदगी भी भारी पड़ जाती है। सामने दीवार पर लगी घड़ी ने टन करके साढ़े छः बजाये तो देवू कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उसने अनुभव किया मानो घंटा-भर तक वह दूसरे लोगों से बातें करता रहा हो।

मशीन चल रही थी और उसके सामने खड़ा एक व्यक्ति दूसरे के लिए कागज रखता जा रहा था। दूसरे कमरे में दुलीचन्द बैठा दिन के छपे कागजों को चार तहों मे मोड़ता जा रहा था, उसकी नाक पर पुराने जमाने के सुनहरे फ्रेम का एक चश्मा लगा हुआ था। उसी के पास खड़ा केशो बीडी

के कश खींच रहा था। उसके बाल उलझे हुए उसके माथे पर बिखरे थे। केशो को कभी देवू ने प्रेस में किसी से ज़्यादा बातें करते नहीं देखा था, देवू ने कई बार काम करते समय उसे चुपचाप मशीन की ओर झाँकते हुए देखा था। प्रेस के एक-दो व्यक्तियों से पूछने पर उसे पता चला था कि केशो का दिमाग़ ठीक नहीं है, दो साल पहले चन्द ही दिनों में उसकी माँ और बहन हैज़े का शिकार बन कर मर गयी थीं, उनकी मृत्यु का उसे इतना सदमा पहुँचा था कि वह सदा चुप ही रहा करता था।

"क्या थक गया, केशो ?" देवू ने उसके पास खड़े होकर कहा।

प्रत्युत्तर में केशो थोड़ा-सा मुसकरा दिया और फिर बीड़ी के कश खींचने लगा।

दुलीचन्द ने भी अपनी आँख ऊपर उठायी और क्षण-भर के लिए काम रोक दिया...इस केशो के बारे में यह पता लगाना मुश्किल है कि वह थका कि नहीं, कभी-कभी तो बिना सिर उठाये घंटों वह काम करता रहता है लेकिन हाथ में फुर्ती नहीं है..."अच्छा, एक बीड़ी तो दे, केशो, इस ओवर-टाइम का लालच भी बुरी बला है, 14-15 घंटे काम करने की अब मेरी उम्र नहीं है। हर बार सोचता हूँ कि एक दिन मालिक से कह कर यह बला हमेशा के लिए अपने सिर से टलवा दूंगा, लेकिन फिर घर का ख़याल आ जाता है...।"

दुलीचन्द प्रेस में काफ़ी पुराना काम करने वाला आदमी था। प्रेस में सब उसे 'चाचा' कहा करते थे। इतने सालों के प्रेस के अनुभव के बाद अगर कोई आदमी होता तो कहीं पहुँच गया होता, लेकिन दुलीचन्द को मशीन के पास जाते डर लगता था। कोई सात-आठ साल पहले वह मशीन पर काम करता था, लेकिन एक दिन धोखे से दो उँगलियाँ दब गयीं और फिर पाँच-छः दिन अस्पताल में रहने के बाद काट दी गयीं। तब से वह मशीन की छाया से भी डरता था, कहता था कि मशीन इंसान की मौत है जो हमेशा उसकी छाती पर सवार होने के लिए आकुल रहती है।

थोड़ी देर बाद तीनों बैठ कर अपना काम करने लगे। बाहर हलकी-हलकी बारिश होने लगी थी और रह-रहकर बादलों की गर्जना में मशीन की खटाखट खो जाती थी। अगस्त के बादल आसमान पर छा गये थे।

रामदयाल अपनी मेज पर झुका एक अखबार के अंतिम प्रूफ देख रहा था और कभी कोई गलती निकलने पर कम्पोजीटर को आवाज़ देकर उससे पूछ लेता था और कभी-कभी कुछ न समझने पर अपने कर्कश स्वर में चिल्लाता था, जिससे मशीन के साथ-साथ उसकी आवाज भी गूँजने लगती थी। जब उसे केवल प्रेम में बैठ कर काम की निगरानी करनी पड़ती तब तक उसकी मुद्रा शांत रहती थी, क्योंकि वह मजे से सिगरेटें फूँकता, किसी को फोन करता या अलमारी में से बोतल निकालकर पेग चढ़ाता, लेकिन जब कोई विशेष ज़िम्मेदारी उस पर आ पड़ती तो वह अपना धैर्य खो बैठता था।

देवू कभी-कभी अपने स्थान पर, बैठा हुआ दरवाज़े के आधे हिस्से से रामदयाल को देखता रहता था। उसे याद आया कि पहले-पहल रामदयाल को देखकर वह उसके प्रति कितना आकर्षित हुआ था! उसका सूट, टाई, जूता और सिगरेट पीने का ढंग देखकर उस दिन उसने भी रामदयाल जैसा बनने की इच्छा की थी, लेकिन खूबचन्द की बातें आज तक उसकी समझ में नहीं आ सकी थीं। आख़िर रामदयाल के प्रति उसके मन में इतनी घृणा क्यों थी?

"आज शायद आँधी आयेगी. .," केशो ने बाहर देखते हुए कहा।

देवू ने अनुभव किया कि बाहर हवा चलने का असर अंदर तक हो रहा है। छत से बिजली के तार से लटकता हुआ लट्टू हलके-हलके घड़ी के पेंडुलम की भाँति आगे-पीछे घूम रहा था।

रामदयाल ने ज़ोर से आवाज़ लगायी, "सुबह जो स्कूल वाली किताब छपी थी, क्या उसकी बाईंडिंग खत्म हो गयी?"

चाचा ने गरदन उठायी, "जा देवू, ज़रा रामदयाल से कह आ कि पौन घंटे तक तैयार हो जायेगी...!"

देवू के जाने पर चाचा फिर बुड़बुड़ाने लगा—"इसे बात करने की भी तमीज नहीं, साला न जाने अपने-आप को कौन-सा लाट साहब समझता है! एक दिन खुद बाईंडिंग करे तो पता चले कि कौन-सा काम कितनी देर में होता है।"

केशो ने धीमे स्वर में झुके हुए कहा, "यह रामदयाल काम तो कम

करता है, लेकिन चिल्लाता ज़्यादा है।"

देवू आकर वैठा तो रामदयाल के विषय में ही सोचने लगा। खूबचन्द ने दुनिया देखी है, उसने जो उसके और हमारे वीच में दीवार वनी है उसका अनुभव वहुत जल्दी और सफ़ाई से किया था। रामदयाल के पास ज़रूर वहुत-सा पैसा होगा। खूबचन्द कहता था कि प्रेस सोना उगलता है, लेकिन मालिक अपने मज़दूरों से हमेशा यही कहता है कि उसे घाटा हो रहा है जिससे मज़दूर अपने वेतन वढ़ाने के लिए न कहें।

प्रेस 11 वजे के क़रीव वंद हुआ। देवू वाहर निकला तव उसने अपने चारों ओर गहरे अंधकार की एक चादर पायी। हवा अव भी तेज़ थी और कभी-कभी उसकी गति में तीव्रता आ जाने से एक अजीव-सा शोरगुल मचाती हुई ग़ायव हो जाती थी।

थोड़ी देर तक वरामदे में खड़ा देवू वाहर सड़क को देखता रहा। उसने एक सिगरेट सुलगा ली। दिन में इस सड़क पर पाँव रखने की जगह नहीं होती, मोटरें और वसें, विना रुके न जाने किन दिशाओं की ओर दौड़ा करती हैं और रात को कितना सन्नाटा हो जाता है।

धीरे-धीरे वह क़दम वढ़ाता हुआ अपने चिर-परिचित रास्ते को पार करने लगा। कोई ताँगा या साइकिल वाला रात्रि की निस्तब्धता को चीरता हुआ निकल जाता तो एकाएक देवू चौंक-सा पड़ता था। वक़्त के साथ-साथ इंसान कितना वदलता जाता है। ज़िंदगी का हर क्षण उसके व्यक्तित्व के किसी पहलू को उभारता है जिसका आभास तक पहले उसे कभी नहीं था, अवसर आने पर वह ऐसे काम करने की शक्ति अपने अन्दर पाता है जिस पर उसे स्वयं अचम्भा होने लगता है। पहले घर वैठे-वैठे ही सारा दिन वीत जाता था। फिर वचनसिंह के यहाँ काम किया, वह ज़िंदगी भी वुरी नहीं थी, सड़क से हज़ारों लोग रोज़ गुज़रते थे, मोटरों में भी और साइकिलों पर भी, दफ़्तर के वावू भी और कॉलिजों के पढ़ने वाले लड़के भी और शाम को कनाटप्लेस का चक्कर लगाने वाली टोलियाँ भी। वह उन्हें देखा करता था और जो चेहरा उसे पसन्द आ जाता था उसे दुवारा देखने की कोशिश भी वह किया करता था...और अव प्रेस की नौकरी, जिसे वह एक दूसरी दुनिया समझता था जो उसकी पहुँच के वाहर थी,

लेकिन अब उसमें कोई नवीनता नही रही थी। जो चीज मनुष्य को नहीं मिलती उसी को पाने की लालसा उसके मन में क्यों उठती है और जब मिल जाती है तो उसका सारा आकर्षण क्यो खत्म हो जाता है ?

वारिश बन्द हो गयी थी, लेकिन हवा पहले से भी अधिक तेज चलने लगी। देवू के बाल उड़ने लगे और उसने अपने सारे शरीर मे एक अजीब-सी सिहरन अनुभव की। गर्मियों की हवा मे जो आनन्द आता है वही सर्दियों मे तीरों की भाँति चुभने लगता है।

कभी-कभी किसी मकान की खिडकी हवा के साथ तेजी से बन्द हो जाती या खुल जाती, जिसके चटाख-पटाख का स्वर सडक के सन्नाटे मे दूर-दूर तक पहुँच जाता था। उसने आसमान की ओर देखा, वह कही-कही साफ था जहाँ तारे दिखायी पड़ते थे।

खूबचन्द से एक बार मिलना चाहिए। चाचा को उसके घर का पता होगा। उसमें सब-कुछ करने की हिम्मत है, जिस बात का जिस क्षण निश्चय कर लेता है फिर उसे करके ही छोडता है। क़दम-कदम पर सभल कर चलने वाले की जिंदगी भी भला क्या है? और वह स्वय एक लकीर पर चलता है। न उससे दायें, न बायें...लेकिन ये तारे भी तो रोज निश्चित समय पर आसमान में चमकते हैं फिर हर सुबह को गुम हो जाते हैं, चाँद बडा-छोटा जरूर होता है लेकिन वह भी समय के मुताबिक, इसी तरह इसान की ज़िंदगी भी बँधी हुई है, कभी किसी की लाटरी आ जाये तो वह बात दूसरी है, लेकिन लाखो लोगों मे से सिर्फ़ एक ही की तो लाटरी आती है।

बस्ती की झुग्गियाँ पास आ गयी। कही रोशनी नही थी, शायद नया व्यक्ति यहाँ आने पर रात को पहचान भी न सके कि यहाँ कितने लोग बसते हैं। वह हलके स्वर में सीटी बजाने लगा। उसे थकान नही थी, नींद भी नही थी और घर जाने की इच्छा भी नही थी। परन्तु फिर भी उसके पाँव पगडंडी पर आगे बढ़ने लगे, बस्ती की पगडडियों पर चलने का वह इतना आदी हो गया था कि अब उसे किसी पत्थर से टकराकर गिर जाने का भय नहीं होता था।

अचानक अपने से दस कदम आगे किसी को धीरे-धीरे पगडंडी से आते

देखकर वह चौंक पड़ा।

"कौन है?" उसने अपनी आवाज़ ऊँची उठाकर पूछा।

आकृति रुक गयी और वहीं खड़ी रही, उसने कोई आवाज़ नहीं की। देवू को प्रतीत हुआ मानो कोई स्त्री हो, क्योंकि उसके वदन से चुन्नी दूर तक हवा में उड़ जाने का विफल प्रयास कर रही थी। पास आने पर देवू ने पहचाना, वह कौशल्या थी।

"तुम देवू...?" कौशल्या ने वड़े गम्भीर भाव से कहा।

देवू की आवाज़ नहीं निकली। वह सीधा कौशल्या के सामने खड़ा था, उसे अपनी ओर घूरते देखकर उसने अपनी आँखें दूसरी ओर फेर लीं। उसका शरीर काँपने लगा, उसकी ज़वान मानो तालू से चिपक गयी। पहली वार आनन्द पर्वत पर उसे और जग्गी को साथ देखकर भी उसे आश्चर्य हुआ था, लेकिन भय नहीं था।

"क्या मुझे देखकर हैरान हो गये, हूं...!" और कौशल्या धीमे स्वर में हँसने लगी..."ठीक तो है, इतनी रात को अकेली औरत को देखकर सव डर जाते हैं...।"

कौशल्या को सामने झाड़ियों की ओर देखते हुए देवू ने अच्छी तरह से कौशल्या के चेहरे की ओर देखा। उसके वालों की लटें हवा में उड़ रही थीं और चुन्नी के उड़ने से उसका उभरा सीना भी उसकी आँखों से छिपा नहीं रहा, लेकिन अँधेरा होने के कारण वह कौशल्या की आँखों को नहीं देख सका।

"आखिर तुम जा कहाँ रही हो?" देवू धीरे-धीरे संभल रहा था।

"यह अभी नहीं सोचा है कि कहाँ जाऊँगी, लेकिन जहाँ से आ रही हूँ, फिर वहाँ नहीं लौटूँगी...," कौशल्या के स्वर में दृढ़ता थी।

देवू चौंक पड़ा, लेकिन कुछ वोला नहीं।

"शायद जग्गी के साथ चली जाऊँ। लेकिन मुझे भरोसा नहीं कि वह मुझे ज़्यादा दिनों तक रख सकेगा। जव वह ऊव जायेगा तव कहीं और ठिकाना देखूंगी। एक औरत को सहारा मिलना ज़्यादा मुश्किल नहीं है।" कौशल्या कह रही थी।

"साफ़-साफ़ वात कहो, भाभी! क्या घर में झगड़ा हुआ है, क्या माँ ने

कुछ कहा है ?"

थोडी देर रुककर कौशल्या ने कहा, "आज कोई नयी बात नही है, मैं कितने ही दिनो से सोच रही थी और आज मन पक्का करके निकल पड़ी। कल यह बात सारी बस्ती को पता चल जायेगी, लेकिन उससे मुझे क्या...मैं अकेली नही रह सकती ।"

हवा का एक तेज झोंका झाडियो को हिलाता हुआ आया और तेजी से दूर भाग गया। देवू उस रात की बात सोचने लगा जब उसने कौशल्या और जग्गी को एक-दूसरे से लिपटे देखा था और उसी दिन उसने अनुभव किया था कि विवाहिता स्त्री कभी अकेली नही रह सकती, लेकिन पुरुष भी तो अकेला नही रह सकता। उसने ध्यान से कौशल्या के शरीर पर एक दृष्टि डाली।

"क्या घर मे सबको मालूम है ?" देवू ने बातें करने के इरादे से पूछा, अन्यथा इसकी उसे विशेष उत्सुकता नही थी।

"मालूम होना-न-होना, सब एक-सा है। जिस घर मे बेटा न हो, वहाँ उसकी औरत के लिए कभी जगह नही होती ..देवू !"

कौशल्या को अपना नाम लेते देखकर वह एक बार फिर सिहर उठा। जो भय की लहर पहले-पहल कौशल्या को देखकर उसके मन मे उठी थी वह अब दूर हो गयी थी।

"तुम इस तरह नही जा सकती, कौशल्या...!" कौशल्या का नाम लेते समय वह तनिक हिचक रहा था, "तुम जग्गी के पास क्यों जा रही हो, वह अच्छा आदमी नही है—वह एक आवारा है।"

इस बार कौशल्या ने देवू पर दृष्टि डाली। दोनो की आँखें [illegible] परन्तु उनमें टकराव नहीं हुआ, अपने बीच मे दोनों ने कोई [illegible] नही की।

कौशल्या थोड़ा-सा मुसकरायी, "जग्गी अच्छा आदमी नहीं है [illegible] मैं अच्छे या बुरे की बात नही सोच रही हूँ। डूबते हुए को यह [illegible] पड़ता कि उसे कौन-सा सहारा मिल रहा है, वह कमजोर है [illegible] बस, वह सिर्फ सहारा चाहता है और औरत जब मर्द का [illegible] है तो वह यह नहीं देखती कि वह मर्द कैसा है...।"

"कौशल्या...!" देवू ने चिल्लाकर कौशल्या की कलाई पकड़ ली। अचानक हाथ पकड़ने से कौशल्या के हाथ की कांच की एक चूड़ी टूटकर नीचे गिर पड़ी, परन्तु दोनों में से किसी ने भी उस पर ध्यान नहीं दिया। कौशल्या ने अपना हाथ नहीं छुड़ाया, लेकिन देवू ने महसूस किया कि वह काँप रही थी।

थोड़ी देर तक दोनों चुपचाप खड़े रहे, हवा के झोंके दोनों के कपड़ों को, बालों को उड़ा रहे थे। दोनों एक-दूसरे से सटे खड़े थे, कोई एक-दूसरे की तरफ़ नहीं देख रहा था। नीचे बस्ती की झुग्गियाँ थीं, जहाँ कहीं भी रोशनी दिखायी नहीं दे रही थी।

"तुम्हें मेरे साथ इस तरह खड़े होते डर नहीं लग रहा, देवू?" कौशल्या ने पूछा।

देवू कुछ नहीं बोला, वह चुपचाप खड़ा था, कभी वह सामने की झाड़ियों और चट्टानों की ओर, और कभी ऊपर खुले आसमान की ओर देखता रहा। वह स्वयं नहीं जानता था कि वह क्या अनुभव कर रहा है, परन्तु जिस उत्तेजना का अंकुर उस रात को आनन्द पर्वत पर फूटा था आज वही भावना अपनी पूरी प्रबलता के साथ उसके मन में आ समायी थी, जिसे दबाने की उसने कोई कोशिश नहीं की और शायद कर भी नहीं सकता था। प्रतिक्षण उसकी लहरें उसे और भी तेज़ होती जान पड़ीं। पिछले कितने ही महीनों का उसका अकेलापन अब पूर्ण रूप से उभर आया था और वह सोच रहा था कि उस जमा हुए ढेर-से गंदे पानी को निकाल फेंकने का वह अवसर उसके हाथ में आया था जिसे वह खो देना नहीं चाहता था।

"तुम घर जाओ देवू, मैं भी अपने रास्ते पर चली जाऊँगी, हम दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं...।" कौशल्या ने अपना हाथ छुड़ाने की हलकी-सी चेष्टा करते हुए कहा।

देवू का बाँध फूट पड़ा, उसके मन में एक आवाज़ उसे आगे बढ़ने के लिए कह रही थी। उसने कौशल्या के दोनों कंधे पकड़ लिये और उसके चेहरे को क्षण-भर के लिए देखता रहा और उसने महसूस किया कि उसकी आँखें, नाक, होंठ, ठुड्डी—सब कितने अजीब-से थे, जिनका पहले उसे कभी

एहसास तक नहीं हुआ था। कौशल्या के चेहरे में उसे लिट्टो की छाप दिखायी दी, वह क्षण-भर के लिए कांप उठा।

कौशल्या को देवू के व्यवहार पर अत्यंत आश्चर्य हो रहा था। वह समझ नहीं पा रही थी कि आखिर देवू उससे चाहता क्या है? वह मूर्तिवत् खड़ी थी, उसके अन्दर छिपी नारी की चेतना देवू के स्पर्श से जागी नहीं थी, क्योंकि देवू कभी उसके सम्मुख पुरुष बनकर नहीं आया था—"मुझे छोड़ दो, देवू!"

देवू ने कसकर कौशल्या को अपने से चिपटा लिया, उसे जग्गी की याद आयी। ईर्ष्या से उसका मन भर उठा—"तुम जग्गी के पास नहीं जाओगी, कौशल्या, मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूंगा...।"

कौशल्या थोड़ी-बहुत वास्तविक स्थिति का अनुमान लगा सकी। उसने अपने-आपको देवू की बाँहों से अलग करने की चेष्टा नहीं की। मन-ही-मन उसे अपनी विजय पर प्रसन्नता हुई। देवू भी सहारा चाहता है एक स्त्री का, किसी और को ढूंढने की उसमें क्षमता नहीं है।

रात बीतती रही, आसमान में तारे स्पष्ट होते गये और हवा भी पहले की अपेक्षा अधिक मन्द गति से चलने लगी।

धीरे-धीरे देवू के मन में उठा तूफान जब शान्त हो गया तो उसने अपने भीतर एक नये प्रकाश की रेखा देखी। दोनों एक चट्टान पर झाड़ियों के पीछे बैठ गये।

देवू अस्फुट स्वर में कह रहा था—"तुम नहीं जानती, कौशल्या, कि मैं हमेशा कितना अकेला अपने-आपको पाता हूँ, कभी-कभी मेरा अकेलापन मुझे ही खाने को दौड़ता है...।"

परन्तु कौशल्या को देवू की इन बातों में उत्सुकता नहीं थी, उसने थोड़ी देर बाद धीमे स्वर से कहा, "हुकम ने शायद कभी मुझसे प्यार नहीं किया, उसके लिए मैं हमेशा उसकी पत्नी से ज्यादा और कुछ नहीं थी, इसीलिए मुझे छोड़ते वक़्त उसे शायद ज़रा भी दुख नहीं हुआ। आज मैं महसूस करती हूँ कि अगर वह न भागता तो शायद मैं एक दिन उसे छोड़कर भाग जाती...।"

फिर कौशल्या थोड़ी देर चुप रही।

कौशल्या का हाथ पकड़ लिया, केवल यह सोचकर कि आसपास और कोई अवलम्ब भी तो नहीं मिल रहा था।

घर में किसी व्यक्ति को इन दोनों के नये रिश्ते पर कोई शक नहीं हुआ। हुकम के चले जाने के बाद कौशल्या ने अपने-आपको झुग्गी की कड़ियों से धीरे-धीरे बाहर निकाल लिया था और अब वह काफ़ी स्वतंत्र हो गयी थी। वह बाहर क्यों जाती है, क्या करती है, किससे मिलती है—इसके बारे से कोई उससे अब पूछता नहीं था। नानकचन्द और भी अधिक उदासीन हो गये थे।

देवू और कौशल्या के लिए रात को चुपचाप तालाब के ऊपर झाड़ियों के पास मिलना कोई असंभव नहीं था। घर में दोनों के पारस्परिक व्यवहार में पहले की अपेक्षा कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। बस, जब कभी देवू बाहर होता और कौशल्या किसी काम से झुग्गी के बाहर निकलती तो देवू ध्यान से उसकी ओर देख लेता और जब वह ओझल हो जाती तो उसके विषय में सोचता रहता। उसको प्रत्यक्ष देखने की अपेक्षा उसके विषय में सोचने में उसे अधिक सुख मिलता था।

पहले चन्द दिनों में, विशेष कर कौशल्या के साथ उस रात को नया रिश्ता बाँधकर देवू को एकाएक हुकम का विचार बड़े ज़ोर से आया था। उसे अनुभव हुआ था, मानो हुकम उसके सम्मुख खड़ा होकर अपनी बड़ी-बड़ी खुली आँखों से उसे देख रहा हो, परन्तु यह विचार अधिक देर तक उसके मस्तिष्क में टिक नहीं पाता था। वह अपने-आपसे कहता था कि हुकम ने सदा ही कौशल्या के साथ अन्याय किया था और कौशल्या भी कहती थी कि उसने कभी उससे प्यार नहीं किया, फिर पति-पत्नी का रिश्ता कैसे ?

एक दिन शाम को प्रेस से लौटते समय सड़क पर अचानक ही ताँगे में लिट्टो को उसकी माँ के साथ देखकर देवू चौंक पड़ा। उसने महसूस किया कि पहले की भाँति इस बार लिट्टो ने उसे देखकर शरमाते हुए अपना मुँह दूसरी ओर नहीं फेर लिया, वह उसकी ओर बिना किसी शरम-हया के ताकती रही, मानो उससे कोई प्रश्न पूछ रही हो। ताँगा दूर चले जाने पर देवू को पता चला कि उसके चेहरे पर पसीने की बूँदें छलक

आयी थी। उसने अपना हाथ अपने चेहरे पर फेरा और फिर एक ठंडी साँस ली। बाक़ी रास्ते वह लिट्टो के ही विषय में सोचता रहा, वह कितनी दुबली हो गयी है, उसका मुँह सफ़ेद पड़ गया है और उसकी आँखों में न जाने वह कौन-सी बिजली थी जिसने उसे चकाचौंध कर दिया था। और फिर धीरे-धीरे लिट्टो के बदले कौशल्या का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। न जाने क्यों देवू के मन में यह विचार आया कि लिट्टो से इस प्रकार मुलाक़ात होना ठीक नहीं हुआ, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपनी आशंका पर स्वयं हँसी आने लगी।

रात को कौशल्या के पास बैठे हुए उसने अनायास ही कहा, "आज मैंने लिट्टो को ताँगे में जाते देखा था. .।" कौशल्या थोड़ी देर तक चुपचाप उसके चेहरे की ओर देखती रही, फिर एकाएक हँसने लगी।

"तुम हँस क्यों रही हो?"

"तो अभी तक तुम लिट्टो के बारे में सोचा करते हो, देवू?"

"शायद तुम समझ नहीं सकती कि लिट्टो के साथ जब मेरी सगाई हुई थी तब मैं कैसे-कैसे सपने देखा करता था, लेकिन अब की बात दूसरी है। अब मेरा उसके साथ कोई रिश्ता नहीं है। लेकिन फिर वह मेरी ओर इस तरह घूर-घूर कर क्यों देख रही थी? शायद सोचती थी कि मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।" देवू धीरे-धीरे कह रहा था।

"हूँ...किसी भी मर्द को अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। दूल्हन को भी नहीं था, जग्गी को भी नहीं था और तुम्हें भी...।"

देवू ने कौशल्या की बात को बीच में ही काटते हुए कहा, "तुम गलत कह रही हो।" और उसने कौशल्या का हाथ पकड़ लिया।

कौशल्या फिर ज़ोर से हँस दी, परन्तु इस बार कौशल्या की हँसी देवू के कानों तक नहीं पहुँची। वह कुछ और ही सोच रहा था और नहीं चाहता था कि कौशल्या को उसके विचार पता चलें।

"तुम जानती हो कि मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। तुम्हें मालूम है कि मैं कितना कमज़ोर हूँ, फिर तुम बार-बार मेरा मज़ाक...?"

"जग्गी भी ऐसा ही कहता था, देवू, लेकिन मैं उसे जानती हूँ। तुम्हें अभी इतना नहीं समझ पायी हूँ, लेकिन जब तक निभता है, निभता रहेगा

और जिस दिन तुम मुझसे दूर जाना चाहोगे उस दिन मैं अपने-आप ही चली जाऊँगी, देवू !"

देवू ने उसे अधिक नहीं कहने दिया।

और एक दिन शाम को जब देवू प्रेस से लौटकर आया तो उसने झुग्गी के बाहर किसी परिचित चेहरे को देखा तो उसे अपनी आँखों पर सहसा विश्वास नहीं हो सका। कुछ क्षणों तक वह वहीं खड़ा उस बिना हिलती-डुलती मूर्ति की ओर देखता रहा। वही चेहरा था, वही आँखें थीं और वही बिखरे रूखे बाल थे। उसे महसूस हुआ, मानो क़ब्र में से उठकर कोई मुर्दा जीता-जागता उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ हो। लेकिन आख़िर हुकम इतने महीनों बाद बिना कोई सूचना दिये कहाँ से यकायक आ गया ? अब क्या होगा ? कौशल्या की शक्ल उसकी आँखों के सामने घूम गयी। उसे अकेला बैठे देखकर उसने अनुमान लगाया कि हुकम को वापस लौटे काफ़ी समय बीत गया होगा, नहीं तो घर वालों की भीड़ उसके इर्द-गिर्द होती।

पास आने पर देवू अनायास ही मुसकरा दिया, परन्तु हुकम पहले की ही भाँति निश्चल बना बैठा रहा। वह कभी देवू की ओर देखता और कभी सामने की ओर। घर के अंदर भी सन्नाटा था।

उस रात को चारपाई पर लेटकर कितनी ही देर तक उसके मन में भाँति-भाँति के विचार घुड़दौड़ लगाते रहे। झुग्गी के अंदर हुकम और कौशल्या थे, परिवार के दूसरे लोग बाहर थे। आख़िर हुकम इस मौक़े पर क्यों आ टपका ? वह क्या फिर कौशल्या के साथ रहने लगेगा ? लेकिन कौशल्या उसका विरोध करेगी, वह कहती थी कि उसे हुकम से कभी प्यार नहीं था और अगर हुकम न चला जाता तो वह भाग जाती। वह अब हुकम के साथ नहीं रहेगी, लेकिन उसे झुग्गी के बाहर निकल आना चाहिए। क्या हुकम उससे अपने प्यार की बातें कर रहा है, क्या वह पत्र न लिखने के लिए माफ़ी माँग रहा है ? कौशल्या मुझसे प्यार करती है, नहीं तो इतने बड़े ख़तरे का मुक़ाबला करके वह मुझसे इस तरह न मिला करती। उसने फिर झुग्गी के अंदर देखा, वहाँ रोशनी नहीं थी, उसकी तबीयत होने लगी कि वह किसी प्रकार उनकी बातें सुन सके। तो हुकम को कोई ठीक-सा काम नहीं मिल सका, वह मज़दूरी करके अपना पेट

भरता रहा। शायद वह बम्बई नहीं गया, नहीं तो उसे जहाज़ पर कोई-न-कोई नौकरी जरूर मिल जाती। लेकिन हुकम में शरम-हया बिलकुल नहीं है, नहीं तो वह इस तरह वापस न लौट आता।

देवू ने सोने की कोशिश की, लेकिन उसे नींद नहीं आयी। बस्ती में चारों ओर सन्नाटा था, हवा बन्द थी। स्त्री का प्यार क्या होता है, उसके सहयोग में क्या सुख मिलता है, इसकी धुंधली-सी एक झांकी वह देख चुका था। कौशल्या का साथ पाने के लिए उसकी तबीयत मचलने लगी, लेकिन आखिर हुकम कौशल्या का पति है, उसके शरीर पर उसे पूरा अधिकार है चाहे कौशल्या उससे प्रेम न करती हो। वह कौशल्या का पति नहीं था, जब किसी के साथ उसका विवाह होगा, तब उस स्त्री पर देवू का पूर्ण अधिकार होगा। देवू ने एक जोर की सांस ली और वह पीठ के बल चारपाई पर लेट गया।

अगले दिन प्रात. ही पुलिस की चार लॉरियां सिपाहियों और पुलिस-इंस्पेक्टरों से भरी आयी। सारी बस्ती में एक तहलका-सा मच गया। पुलिस के हाथों में डंडे थे। बस्ती वालों को मालूम था कि इतवार तक बस्ती खाली करने का हुक्म उन्हें मिल चुका है, परन्तु इस पर किसी ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। अब पुलिस को देखते ही सब कांप उठे। पुरुष अपनी झुग्गियों से बाहर निकल आये और स्त्रियों के झुंड दरवाजों पर खड़े होकर कानाफूसी करने लगे। निकट भविष्य की आशंका से उनका जी डांवाडोल हो गया। सबको यह विश्वास हो चुका था कि पुलिस वाले जबरदस्ती उन्हें बस्ती से निकाल देंगे, परन्तु फिर भी अन्त समय तक आशा ने उनका साथ नहीं छोड़ा। शायद उनकी गिड़गिड़ाहट से इन वर्दी वालों के दिल पसीज जायें।

"अब क्या होगा?"

"कैसे पटेलनगर जाकर बस जायें? यहां जो दुकानें बनायी हैं उनका क्या होगा?"

"इनके मन में ज़रा भी दया नहीं है, आख़िर इनके भी तो बाल-बच्चे होंगे..!"

इस प्रकार के प्रश्न और उत्तर बस्ती के लोगों में उठ रहे थे। पुलिस

वालों से डरकर कुछ बच्चे ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे और जब चुप कराने पर भी वे चुप नहीं हुए तो उनकी माँओं और बहनों आदि ने मार-पीटकर उन्हें चुप कराना चाहा, परन्तु उनकी चीखें बढ़ती गयीं। बस्ती में शोर-गुल हमेशा होता था, परन्तु इस नये वातावरण के शोर-गुल में एक वीभत्सता थी जिससे सबके दिल दहल गये थे।

निहालचन्द बस्ती के एक बड़े बुज़ुर्ग समझे जाते थे, उनके सामने बस्ती की कोई स्त्री सिर-खुले नहीं आती-जाती थी। बस्ती वाले अपने दुख-दर्द लेकर उनके पास आते थे और वे अपनी बुद्धि के अनुसार सबको दिलासा और सहानुभूति से भरी राय देते थे। किसी के घर में शादी हो, मौत हो, कोई बीमार हो, निहालचन्द सदा वहाँ पहुँच जाते थे। जब झुग्गियाँ उठाने की बात बस्ती में फैली थी तब से निहालचन्द को चिंता होने लगी थी, परन्तु बस्ती के अन्य लोगों की भाँति उन्हें भी यह पुलिस की केवल धमकी ही जान पड़ी और लोगों के इस विषय में पूछने पर उन्होंने दिलासा दी कि ऐसा नहीं हो सकता, सरकार उनकी मुसीबतों को इस प्रकार नज़रअंदाज़ नहीं करेगी।

अब पुलिस को देखकर वे भी जैसे-तैसे जल्दी से सिर पर पगड़ी बाँधकर अपनी झुग्गी से बाहर निकल आये और आस-पास की झुग्गियों के पुरुष उनके आस-पास आकर खड़े हो गये। निहालचन्द ने सबको दिलासा दी और फिर पुलिस वालों के पास धीरे-धीरे क़दम बढ़ाते हुए आगे बढ़ गये।

"आज यहाँ से सारी झुग्गियाँ हटा दी जायेंगी। महीना-भर का नोटिस तुम लोगों को दिया जा चुका था...," हवलदार ने कड़ी निगाहों से निहालचन्द की ओर देखते हुए कहा।

"लेकिन हवलदार जी...ये लोग कहाँ जायेंगे...?" निहालचन्द ने अपनी आवाज़ को अत्यंत नम्र बनाते हुए कहा।

हवलदार का क्रोध बढ़ गया, "पटेलनगर में जगह तो दे दी है...लेकिन मैं यहाँ बहस करने नहीं आया हूँ।"

निहालचन्द ने अपने दोनों हाथ जोड़ दिये,"आप नहीं जानते, हवलदार जी, कि किस खून और पसीने से यहाँ की झुग्गियाँ...!"

"चुप हो बुड्ढे—आज तुम नही, ये सिपाही झुग्गियाँ गिरायेंगे...!"

हवलदार ने ज़ोर से एक सीटी बजायी और 50-60 सिपाही बस्ती के चारो तरफ अपने डडे सभालकर भागने लगे। झुग्गियों के बाहर खड़े लोगों की चीखें निकल गयी और औरतों का क्रन्दन गूंज उठा।

देवू बाहर बैठा अपनी झुग्गी की दीवारो को गिरते देख रहा था, मिट्टी और ईंटों की दीवारें इतनी शक्तिशाली हो सकती हैं, इसका उसे विश्वास नही था। उसने सदा ही झुग्गी को दीवारों को अपने जैसा कमजोर समझा था। परन्तु कुछ ईंटो के गिरने के बाद दूसरी ईंटें तेजी के साथ नीचे गिरने लगी, छत की टीन का टुकड़ा बडी आसानी से एक भयकर आवाज करता हुआ नीचे आ गिरा। सुभागी ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी और घर का सामान बाहर रखती जाती थी, लाली और हुकम उसका हाथ बँटा रहे थे, परन्तु दोनों में उतना उत्साह नही था मानो झुग्गी के नष्ट होने के बाद घर के टूटे-फूटे पुराने सामान के प्रति उसका कोई आकर्षण शेष नहीं रह गया था।

दूसरी झुग्गियों का भी यही हाल था। जहां पुलिस का थोड़ा-बहुत विरोध किया जाता वही वे अपने डडो का सहारा ले लेते और फिर उनका मार्ग साफ हो जाता था। स्त्रियों और बच्चो का रोना बढ़ता जा रहा था।

कुछ देर तक देवू को यह सब देखकर प्रसन्नता हुई। बस्ती से उसका लगाव नही रहा था, बस्ती के लोगो से उसे घृणा-सी होने लगी थी और इस विध्वस को देखकर उसे एक आत्मशाति-सी मिल रही थी। अब हुकम और कौशल्या रात को झुग्गी के अदर नही सो सकेंगे...अब कभी इन पगडंडियो पर आने-जाने का कष्ट उसे नही उठाना पडेगा, उसका पिछले पाँच-छ सालो का अतीत मानो इन ईंटों के नीचे दब जायेगा। इस विचार से उसे प्रसन्नता हुई।

अचानक सुन्दर का विचार उसके मस्तिष्क में बिजली की भाँति दौड गया। क्या आज सुन्दर की स्मृतियाँ भी सदा के लिए यहाँ दब जायेंगी? कभी-कभी उसकी याद आ जाने से उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता था, लेकिन सुन्दर अब नही रहा। इसी झुग्गी के सामने बैठकर वह

अपनी किताबों में झुका रहता था, यहीं बाहर चारपाई पर वे दोनों लेटते थे और उसकी गरम-गरम श्वास वह अनुभव करता था...और इसी झुग्गी में एक दिन ढोलक बजी थी, उसकी सगाई हुई थी। यकायक देवू ने अनुभव किया, मानो उसकी छाती में एक तीव्र वेदना उठ रही हो। उसने अपनी आँखें दूर उठायीं। चारों ओर खलबली मची हुई थी, औरतों और मर्दों की चिल्लाहटें थीं, ईंटों के गिरने की आवाज़ें थीं। उसका हृदय रो पड़ा। वह समझ रहा था कि इस बस्ती में बिताये पिछले पाँच-छः सालों में परिस्थितियों ने उनके मन में बस्ती के प्रति केवल वैराग्य ही नहीं, वरन् एक घृणा-सी भी पैदा कर दी थी, परन्तु धीरे-धीरे देवू अनुभव कर रहा था कि बस्ती की प्रत्येक ईंट के गिरने के साथ-साथ वह एक-एक क़दम बस्ती के और भी समीप पहुँच रहा है। उसने नहीं जाना था कि उसके मन में बस्ती की ज़िदगी के प्रति छिपे हुए प्रेम और अपनत्व के गहरे अंकुर थे जो आज उस अवसर पर एकाएक उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध फूट गये थे।

तभी अपनी झुग्गी के सामने पहले से कुछ अधिक कोलाहल सुनायी दिया, उत्सुकतावश उसने उस ओर नज़र दौड़ायी। लाली और एक सिपाही में न जाने क्या हाथापाई-सी हो रही थी। सिपाही लाली का हाथ पकड़कर उसे झुग्गी से बाहर खींच रहा था और लाली अपना हाथ छुड़ाकर झुग्गी के अंदर जाना चाहती थी। सुभागी ज़ोर-ज़ोर से चीखें मार रही थी और अपने बालों को नोंचती जाती थी।

देवू झटपट उठ खड़ा हुआ और फिर क्षण-भर के बाद बड़ी तीव्र गति से अपनी झुग्गी की ओर भागा।

"वह दीवार मत गिरा, हम अभी यहाँ से चले जायेंगे...," लाली ज़ोर-ज़ोर से कह रही थी।

देवू समझ नहीं सका कि लाली उस बची हुई दीवार को गिराने के लिए क्यों मना कर रही है? अंदर ईंटों की एक छोटी पहाड़ी बन गयी थी, कहीं लकड़ी के तख़्ते थे और कहीं चीथड़े।

अचानक देवू के सामने चार साल पहले की एक घटना घूम गयी। सुन्दर की किताबों के लिए कोई स्थान झुग्गी के अंदर नहीं बन सका था

और उसकी आवश्यकता भी किसी ने नहीं समझी थी, परन्तु सुन्दर जिद कर रहा था कि झुग्गी की एक दीवार से सटाकर एक ऐसा स्थान बना दिया जाये जहाँ सुन्दर अपनी किताबें रख सके। उस दिन सुन्दर ने खाना नहीं खाया था और वह कितनी ही देर तक रोता रहा था। अगले दिन लाली और सुन्दर ने मिलकर कुछ ईंटो को खडा करके उसकी किताबो के लिए एक आलमारी-सी बना दी थी। लाली उसी आलमारी के गिराये जाने का विरोध कर रही थी।

तभी देर होते देख सिपाही ने लाली को ज़ोर से एक ऐसा धक्का दिया जिससे वह ज़मीन पर गिर पडी।

बिना सोचे-समझे देबू तेज़ी से आगे बढ़ा और उसने कसकर सिपाही के डंडे को अपने दोनो हाथों से पकड लिया। उसके दाँत कसकर आपस मे जकड़ गये थे जिससे उसके मुँह से कोई स्वर नही निकल रहा था। और वह उस दीवार को गिरा रहा था, आज उसका अग-अग उनका मुकाबला करने के लिए उतावला-सा जान पड़ता था। थोडी खीचा-तानी के बाद देबू ने अनुभव किया, मानो उसकी आंखो के सामने अँधेरा छा गया हो, वह औंधे मुंह ज़मीन पर गिर पड़ा था और उसके कंधे से खून निकल रहा था।

बस्ती मे लोगो का चीखना-चिल्लाना, ईंटो और लकड़ी के फट्टो के गिरने की आवाज़ें, बच्चो की चीत्कारें—सब मिलकर एक मिश्रित-सा कोलाहल पैदा कर रही थी। सूरज ऊपर चढ आया था। कुछ लोग अपना बचा-खुचा सामान बचाने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन कुछ अकर्मण्य-से चुपचाप अपनी-अपनी झुग्गियों के सामने हाथ-पर-हाथ धरे खड़े थे।

बस्ती मे हल्ला सुनकर राह चलते लोग ऊपर सड़क पर खडे नीचे का तमाशा देखने लगे और कुछ अधिक कौतूहल वाले लोग पगडडी से नीचे उतर आये